कमलेश माथुर

वृन्दावनलाल वर्मा के उपन्यासों में नैतिकता

वृन्दावनलाल वर्मा
के
उपन्यासों में नैतिकता

वृन्दावनलाल वर्मा के उपन्यासों में नैतिकता

डॉ० कमलेश माथुर
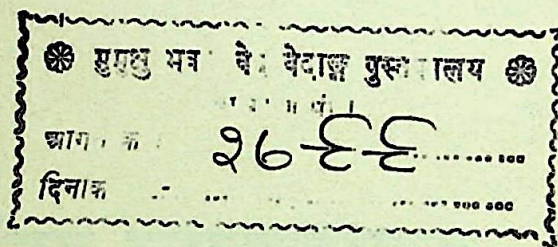
दो शब्द

प्रस्तुत कृति डा० कमलेश माथुर के अध्ययन की दूसरी कड़ी है जिसे मैं उनके रुचिमय अध्यवसाय का प्रतिफल मानता हूं। जब उन्होंने 'वृन्दावनलाल वर्मा के उपन्यासों में नारी पात्र' पर पी-एच० डी० की उपाधि प्राप्त की थी तो मैंने उन्हें यही निर्देश दिया था कि आज से आपके अध्ययन का शुभारंभ हो रहा है। कहीं ऐसा न हो कि यह रुचि व्यवहृत हो जाये और आज मैं अपने निर्देश को अनुपालित पाकर अति तुष्ट हूं।

स्वर्गीय वृन्दावनलाल वर्मा अद्‌भुत लेखक थे। उनका आदर्शवाद रूढ़िमुक्त एवं प्रगतिशील था। उन्होंने अपने उपन्यासों में नैतिकता को उभारने का यथाशक्ति प्रयत्न किया और इतिहास को उसकी भूमि बनाया। उनके अधिकांश उपन्यास ऐतिहासिक हैं। वे इतिहास की भूमि पर आदर्श और नीति का पादप आरोपित करते हैं और प्रगतिशीलता का खाद देकर उसे पुष्ट करते हैं। इन उपन्यासों में वे नारी के आदर्श की भी प्रतिष्ठापन करते हैं। यही कारण है कि उनके कुछ उपन्यास नायिका-प्रधान हैं।

डा० कमलेश को स्वर्गीय वर्मा जी के आदर्शों में एक चुम्बकीय शक्ति का अनुभव हुआ। उन्होंने सभी क्षेत्रों में आदर्श को उभरता हुआ देखा, नारी की मानसिक और हार्दिक क्षमताओं को आलोकित देखा और इसी आकर्षण का परिणाम प्रस्तुत कृति है।

इस कृति को डा० माथुर ने छोटे-छोटे छः अध्यायों में विभाजित किया है। पहला अध्याय नीति की व्याख्या और परिचय प्रस्तुत करता है। दूसरे अध्याय में वर्मा जी से पहले के उपन्यासकारों की नैतिक भूमिका की परीक्षा की गयी है। तीसरे अध्याय में वर्माजी की नैतिकता के प्रेरणा-स्रोतों की गवेषणा है। चौथे अध्याय में सामाजिक नीति पर प्रकाश डाला गया है और पाँचवें अध्याय में राजनीतिक धरातल का परिचय दिया गया है। छठे अध्याय में उपसंहार है जिसमें वर्माजी के उपन्यासों का सामाजिक स्तर पर मूल्यांकन किया गया है। कृति छोटी है, किन्तु मेरी दृष्टि में उपादेय भी है।

लेखिका ने एक दृष्टिकोण प्रस्तुत करके अध्ययन को प्रेरित किया है। यह प्रतिपादना 'अथ-' सूचना है, कार्य की 'इति' नहीं है। साफ-सुथरी भाषा में एक

गवेषणात्मक दृष्टि प्रस्तुत करके डा० कमलेश ने अध्ययन के मार्ग का द्वार खोला है। मैं उन्हें इस प्रयास के लिए साधुवाद देता हूं और आशा करता हूं कि उनकी कर्मण्यता प्रगतिशील बनी रहेगी।

—सरनामसिंह शर्मा

आचार्य एवं अध्यक्ष, हिन्दी विभाग,
राजस्थान विश्वविद्यालय,
जयपुर
२५.३.७२

परमप्रिय परमपूज्य दादाजी को
जिनका स्मरण ही प्रेरणा,
आशीर्वाद ही जीवन-सम्बल,
तपःपूत जीवन ही मेरा आदर्श है।

भूमिका

किशोरावस्था से ही वर्माजी मेरे प्रिय उपन्यासकार रहे हैं। उनके उपन्यास पढ़ते समय अनेकानेक बार मेरे नेत्र छलछला आये हैं। उनके तेजस्वी, शक्तिशाली, स्वस्थ, सबल तथा ओजवर्धक नारी पात्रों ने सदैव हृदय में हलचल मचा दी है। इसीलिए जब मैंने हिन्दी में अनुसन्धान-कार्य करने का विचार किया तो विषय-चयन की समस्या मेरे सामने नहीं आयी। मैंने वर्माजी के उपन्यासों में नारी चरित्र विषय पर शोध-ग्रन्थ की रचना की। लिखते समय विषय से हटकर अन्यान्य विषयों पर लिखने की प्रबल इच्छा होती थी परन्तु पूज्य गुरुदेव डा० सरनामसिंहजी ने कभी इसकी अनुमति नहीं दी। शोध-ग्रन्थ में एक भी अनर्गल शब्द अथवा अनावश्यक विस्तार गुरुदेव की तीक्ष्ण दृष्टि से ओझल नहीं रह पाता। विषयान्तर के भय से ग्रन्थ नारी पात्रों तक ही परिसीमित रह गया।

शोध-ग्रन्थ समाप्त करने पर अनुभव हुआ कि अभी तो वर्माजी के उपन्यास-साहित्य के कई परिपार्श्व अनुद्घाटित रह गये हैं। इनके उपन्यासों का अध्ययन करते समय जो अन्यान्य विषय प्रकट होने को व्याकुल थे, अनकहे रह गये हैं। पूज्य गुरुदेव ने आदेश दिया कि अब अपने विचारों को मूर्त करना हो तो एक पुस्तक लिख डालो। उनकी आज्ञा उनके शिष्यों के लिए वेद-वाक्य है।

वर्माजी के उपन्यासों का अध्ययन करते समय उनके नैतिक मूल्यों ने मुझे बहुत ही प्रभावित किया। आज के उपन्यासों से उनके उपन्यास कितने भिन्न हैं। बीस उपन्यासों में एक भी स्थिति ऐसी नहीं जो हृदय में विकार उत्पन्न कर सके, एक भी पात्र ऐसा नहीं जिसका व्यवहार अथवा आचरण अश्लीलता का स्पर्श भी कर सके। उपन्यास चाहे सामाजिक हो अथवा ऐतिहासिक, अनोखी गरिमा से मण्डित हैं। उपन्यास के पात्र पाठक को एक ऐसे लोक में अपने साथ ले जाते हैं जहां स्फूर्ति, उल्लास, शक्ति तथा ओजस्विता है। उपन्यास पढ़ते समय पाठक संसार की कुण्ठाओं, वेदनाओं, कठिनाइयों एवं बाधाओं को भूल जाता है। लेखक मानो शल्य-चिकित्सा करके असत् को बाहर निकालकर सत् प्रतिष्ठित कर देता है।

वर्माजी ने नैतिक मूल्यों को प्रतिष्ठापित किया है। उपदेश देकर नहीं, कहानी

कहकर उन्हें जन-मानस में प्रस्थापित करना चाहा है। अब यह पाठक की इच्छा है कि वह उनसे लाभ उठाये अथवा नहीं। लेखक ने इसी आशा से इन उपन्यासों को लिखा है कि समाज में जाग्रति हो, जन-मानस स्फूर्तिमय बने, नारीका उत्थान हो, समाज उन्नत हो तथा देश का विकास हो। अब हम यदि इन ज्योति-किरणों से लाभान्वित न हों तो यह हमारा दुर्भाग्य।

इस पुस्तक-रचना के लिए डा० सरनामसिंह जी के प्रति तो क्या आभार-प्रदर्शन करूं ? हम जो कुछ लिखते हैं उसमें उनका आशीर्वाद तो निरंतर विद्यमान रहता है। यह पुस्तक उनकी प्रेरणाओं और शुभकामनाओं का ही प्रतिफल है।

नन्ही-सी सखी वीणा ने इस पुस्तक के लिए जो परिश्रम किया है, वह उसका 'दीदी' के प्रति स्नेह-भरा कर्तव्य है। वह तो अपनी ही है, उसके प्रति आभार-प्रदर्शन कोई अर्थ नहीं रखता। स्नेह-सम्बन्धों में आभार-प्रदर्शन मात्र औपचारिकता है।

और किसी के लिए कुछ कहूं या नहीं, पर नन्ही-सी बेटी 'ममता' का नाम कहीं नहीं आया तो वह तूफान मचा देगी। मां को पढ़ने देने से बड़ा त्याग वह और क्या कर सकती थी ?

पुस्तक आपके सामने है, अपनी भूलों और त्रुटियों सहित—

—कमलेश माथुर

अनुक्रमणिका

१ : : नीति—व्याख्या एवं परिचय

व्याख्या

नीति शब्द 'रात्रि-प्रापणे' धातु से वना है, जिसका अर्थ है 'ले जाना'। धातु की दृष्टि से नीति का अर्थ हुआ 'जो ले जाने वाली हो,' अर्थात् जो मानव का उचित मार्गदर्शन करे वही नीति है। यह तो नीति का शाब्दिक अर्थ हुआ। नीति का लक्ष्य है मनुष्य को सन्मार्ग की ओर अग्रसर करना। मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। समाज में अपने स्वार्थों की रक्षा करते हुए उसे अन्य व्यक्तियों के हित का भी विचार करना पड़ता है। प्रत्येक समाज शान्ति-रक्षा एवं व्यवस्था के लिए एक विशेष प्रकार की आचरण पद्धति वनाता है। इस पद्धति का लक्ष्य सामाजिक कल्याण होता है। इस पद्धति पर चलकर समाज के सदस्य परस्पर मित्रतापूर्वक व्यवहार करते हैं तथा समाज के सामूहिक जीवन को सुखी तथा समृद्ध बनाते हैं। इस विशिष्ट आचार पद्धति को समाज स्वीकार कर लेता है और क्रमशः यह सुस्पष्ट और सुनिश्चित व्यवस्था के रूप में परिवर्तित हो जाती है और समाज में रहने वाले प्राणी के आचार का निर्देशन एवं नियंत्रण करने लगती है। जव यह पद्धति व्यवस्थित तथा सुनिश्चित हो जाती है तभी उसे नैतिकता की संज्ञा प्राप्त होती है। इस व्यवस्था के अनुरूप किया जाने वाला आचरण नैतिक कहलाता है।

मानव जीवन अत्यन्त विशाल और गहन है तथा उसके वहुमुखी क्षेत्र हैं। क्षेत्र चाहे सामाजिक हो अथवा राजनैतिक, आध्यात्मिक हो अथवा चारित्रिक, नीति सभी का मार्ग-दर्शन कर सर्वतोमुखी उन्नति के लिए मार्ग प्रशस्त करती है। समाज में आदर-सम्मान प्राप्त करने के लिए मनुष्य को किन गुणों को अपनाना चाहिए तथा किन दुर्गुणों का परित्याग करना चाहिये, इस प्रकार आचरण सम्वन्धी शिक्षा प्रदान करना ही नीति का उद्देश्य है।

उदय

अव प्रश्न उपस्थित होता है कि मनुष्य को नीति की आवश्यकता क्यों प्रतीत हुई ? समाज में फैली विश्रृंखलता, स्वेच्छाचारिता, दुराचारिता एवं अव्यवस्था को

देखकर आरम्भिक काल में ही मानव को नीति की आवश्यकता प्रतीत हुई होगी। व्यवस्था, लोक-रक्षण, तथा सामाजिक समृद्धि के लिए नैतिक पद्धति को समाज ने स्वीकार किया होगा। संघर्षमय जीवन की विपमताओं, विफलताओं तथा कटु-ताओं से त्रस्त होकर मानव यह सोचने के लिए वाध्य हुआ होगा कि जीवन का लक्ष्य क्या है ? सफल जीवन के सिद्धान्त क्या हैं ? आदर्श जीवन-यापन का सुगम मार्ग क्या है ? निस्संदेह मनुष्य ने निरन्तर चिंतन, मनन एवं अन्वेपण के पश्चात नैतिक नियमों की स्थापना की होगी।

परिभाषा

अतः नीति की परिभाषा इस प्रकार की जा सकती है, "मानव समाज को श्लाघनीय एवं सुव्यवस्थित पथ पर अग्रसर करने तथा उसके प्रत्येक व्यक्ति को धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की सम्यक एवं सुगमता से उपलब्धि कराने के हेतु जिन विधि अथवा निपेधात्मक, वैयक्तिक एवं सामाजिक नियमों का विधान देश, काल एवं पात्र को लक्ष्य में रखकर बनाया जाता है वही नीति है।"[१]

रूप

सर्वप्रथम नीति का उदय सामूहिक जीवन में हुआ। सामाजिक सामंजस्य एवं समरसता को नैतिकता का चरम लक्ष्य माना गया, परन्तु व्यक्ति को समाज से अलग नहीं किया जा सकता। यदि समाज-हित-चिन्तन ही नीति का एकमात्र लक्ष्य निर्धारित कर दिया जावे और समाज की रचना करने वाले व्यक्तियों को दृष्टि-ओझल कर दिया जावे तो यह अतिवाद व्यक्ति-विनाश का कारण वन जायेगा। व्यक्ति, समाज तथा मानवता तीनों का ध्यान रखने तथा तीनों का हित-चिन्तन करने के कारण नैतिकता के तीन रूप दृष्टिगत होते हैं। मूल नैतिकता, सामाजिक नैतिकता, एवं वैयक्तिक नैतिकता।

मूल नैतिकता

मूल नैतिकता में मानव मात्र के कल्याण की भावना गुंफित है। इसमें सार्व-भौमिकता तथा सार्वकालिकता है। इसमें प्रत्येक मानव के सुख एवं कल्याण को सर्वोपरि समझा गया है। मूल नैतिकता ने समय तथा स्थान के वन्धनों को तोड़ कर मानव-मात्र के कल्याण की कामना की है। मनुष्य के आचरण की कसौटी

---

१. गंगाधर : संस्कृत काव्य में नीति तत्त्व (शोध-ग्रंथ), आमुख, पृ० १३।

मानव-हित है। जिस कार्य-सम्पादन से मानव-मात्र का हित हो इसने वही सदाचरण माना है। "मूल नैतिकता मानवता के कल्याण की चिन्ता करती है। इसलिए इसकी दृष्टि विशाल है और इसका चिन्तन उच्चादर्शों को अपने सम्मुख रखे हुए है। मूल नैतिकता ने मानव को मानव के नाते सम्मानित करते हुए मानव-मात्र की स्वतन्त्रता और समता के आदर्शों को प्रमुखता दी है। इसने रंगभेद, जातिभेद अथवा धर्मभेद की संकुचित घेरेबन्दी को तोड़कर सम्पूर्ण मानवता के कल्याण को अपना चरम लक्ष्य बनाया है।"[1]

मूल नैतिकता ने स्वतन्त्रता, समता और भ्रातृत्व-भावना को मानव-मात्र का आदर्श, तथा प्रेम, सेवा और त्याग को कर्त्तव्य माना है। मूल नैतिकता मानव-मात्र से यह अपेक्षा करती है कि वह समस्त प्राणियों के प्रति प्रेम-भरा भाव रखे, उनकी सेवा में रत रहे तथा स्वार्थ-त्याग कर उनके हित के लिये प्रयत्नशील रहे। ये मूल नैतिकता के आदर्श तथा कर्त्तव्य सभी सभ्य देशों में समान हैं और समय इनमें परिवर्तन नहीं ला पाता।

सामाजिक नैतिकता

सर्वप्रथम नीति के मूलभूत तत्त्वों का उद्‌गम सामाजिक जीवन में हुआ तथा उसका लक्ष्य सामाजिक व्यवस्था रहा। समाज में निवास करने वाला प्रत्येक व्यक्ति अन्य व्यक्तियों से सहयोग करता हुआ अपने हित का चिन्तन करता रहे, किसी अन्य व्यक्ति के हित से टकराये नहीं, समाज में सुव्यवस्था तथा समरसता बनी रहे इसके लिये सामाजिक नैतिकता ने प्रत्येक व्यक्ति के लिये कुछ नियमों, बन्धनों एवम् कर्त्तव्यों की योजना की और उन्हें व्यवहार में लाना भी उसने आवश्यक समझा।

समाज को नैतिक शृंखला में आबद्ध करने से समाज में सुदृढ़ता आती है। कर्त्तव्य और नियम समाज के प्रत्येक व्यक्ति के आचरण को एक साँचे में ढाल देते हैं। एक बात ध्यान में रखने की है कि ये कर्त्तव्य एवम् नियम समाज स्वयं निर्धारित करता है, ये बाहर से आरोपित नहीं हैं। नीति-नियमों के निर्धारण में मनोयोग एवम् तर्क का पूर्ण योगदान रहता है फिर सर्व स्वीकृति से ये नियम रूढ़ हो जाते हैं और सामाजिक जीवन का नियन्त्रण करते हैं। ये नैतिक नियम एवम् कर्त्तव्य समाज की कुछ विशेष आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये बनाये जाते हैं। अतः युगानुरूप परिस्थितियों के परिवर्तित हो जाने पर इनमें भी परिवर्तन

---

१. डा० सुखदेव शुक्ल : हिन्दी उपन्यास का विकास और नैतिकता, पृ० ५।

आ जाता है। ये मूल-नैतिकता के नियमों की भाँति अटल तथा शाश्वत नहीं होते।

वैयक्तिक नैतिकता

कोई भी समाज केवल वाह्य नैतिकता के सहारे जीवित नहीं रह सकता। सामाजिक नैतिकता के दबाव के कारण व्यक्ति, विशेष प्रकार के आचरण के लिये बाध्य होता है। यदि कारण विशेष से समाज छिन्न-भिन्न हो जाये तो समाज में उच्छृंखलता आ जाती है। जब तक नैतिकता मानव-मन में गहन प्रवेश न कर ले तब तक समाज व्यवस्था में स्थिरता नहीं आ सकती। "इस कारण व्यवस्था को सुस्थिर बनाये रखने के लिये समाज के सदस्यों में आन्तरिक नैतिकता होनी चाहिये। कोरी वाह्य नैतिकता अपर्याप्त है। इस आन्तरिक नैतिकता को वैयक्तिक नैतिकता भी कहते हैं। वैयक्तिक नैतिकता के अन्तर्गत व्यक्ति में भले-बुरे अथवा उचित-अनुचित का ज्ञान, उसके मत और विश्वास, उसके नैतिक आदर्श और मूल्य आ जाते हैं। इस वैयक्तिक नैतिकता की सहायता से वह अपने आचरण को समाजानुकूल बनाने में समर्थ हो जाता है। यह वैयक्तिक नैतिकता, अपने व्यापक अर्थ में व्यक्ति का अपना जीवन-दर्शन है, जिसके सहारे वह जीवन-यापन करता है।"[१]

व्यक्ति के आचरण तथा चिन्तन पर सांस्कृतिक परम्परा तथा सामाजिक रहन-सहन का बहुत प्रभाव पड़ता है, परन्तु वह अपने व्यक्तित्व-विकास के लिये अपना स्वतन्त्र जीवन-दर्शन अपना लेता है। समाज के परस्पर विरोधी धार्मिक, नैतिक और सामाजिक आदेशों तथा नियमों में से वह अपने लिये आचरण-पद्धति का चयन करता है तथा परिस्थितियों के अनुकूल वह उनमें आवश्यकतानुसार परिवर्तन भी कर लेता है।

नैतिक निर्देश

नीति की व्याख्या के पश्चात् नीति-निर्देश के विकास को जानना समीचीन प्रतीत होता है। निर्देश नीति-विकास की प्रथम अवस्था है। इसमें व्यक्ति विशेष को निर्देश दिये जाते हैं जो केवल उसी से सम्बन्धित होते हैं। इन नैतिक-निर्देशों से केवल वही व्यक्ति प्रभावित होता है अन्य व्यक्ति अपरिचित तथा अप्रभावित रहते हैं, परन्तु उपदेश व्यक्ति विशेष तक ही सीमित नहीं रहते।

---

१. डा० सुखदेव शुक्ल : हिन्दी उपन्यास का विकास और नैतिकता, पृ० ९।

उपदेश

विद्वान, मनीषी तथा विचारक व्यक्ति से उठकर समाजहित-कामना की ओर उन्मुख होते हैं। अपनी उपदेशात्मक अभिव्यक्ति वे समाज तक पहुँचाना चाहते हैं। फलतः समाज के लिये कहे गए नीति के उपदेशात्मक वचन समाज में पीयूष-वर्षण करते हैं।

सूक्ति

उपदेशों को हृदयग्राही एवम् आकर्षक बनाने के लिए एवम् संक्षेप में अधिक कहने के लिए प्रभावोत्पादक उदाहरणों का समावेश कर दिया जाता है। समास शैली में नीति से सम्बन्धित उदाहरणों को सुव्यवस्थित एवम् आकर्षक रूप में प्रस्तुत किया जाता है जिससे निस्संदेह सौन्दर्य-वृद्धि होती है।

अन्योक्ति

नैतिक विकास की इस अवस्था में भी उपदेशात्मकता तो रहती ही है परन्तु इसमें प्रत्यक्ष रूप से उपदेश न देकर किसी अन्य को उसका प्रतीक मानकर संकेत रूप में उपदेश दिये जाते हैं, जिससे कि उपदेशात्मकता अप्रीतिकर न हो जाये।

औपदेशिक कथा

नीति-विकास की यह अन्तिम अवस्था सुन्दरतम मानी गयी है। इसके अनुसार कथा कहने के अनन्तर निष्कर्ष के रूप में सूक्तियों को उद्धृत किया जाता है। ऐसा करने से इसमें मनोरंजकता आ जाती है तथा नीति-वचन बुद्धि-विलास न रहकर दैनिक-जीवन के अंग प्रतीत होने लगते हैं।

उपन्यास और नीति

नैतिकता के स्वरूप, लक्ष्य एवं निर्देश के उपर्युक्त विवेचन के उपरान्त यह प्रश्न विचारणीय है कि उपन्यास और नैतिकता का परस्पर क्या सम्बन्ध है? उपन्यास रचना का लक्ष्य क्या है? प्रायः सभी प्रख्यात साहित्यकारों ने उपन्यास रचना में मानव-जीवन की अभिव्यक्ति को प्रमुखता दी है। प्रेमचन्द के अनुसार उपन्यास मानव के आचरण तथा स्वभाव की गुत्थियों को सुलझाता है। वह मानव-जीवन का सजीव चित्रण है। उनका कथन है—"मैं उपन्यास को मानव-चरित्र का चित्र-मात्र समझता हूँ। मानव-चरित्र पर प्रकाश डालना और उसके

रहस्यों को खोलना ही उपन्यास का मूल तत्त्व है।"[१]

उपन्यास जीवन का चित्रण है और नैतिकता तथा समाज एवं जीवन अन्योन्याश्रित हैं। अतः उपन्यास में नैतिकता का प्रवेश सहज अनुमेय है। उपन्यासकार दार्शनिकता के सहारे मानव-जीवन की विविधता और जटिलता में एकरूपता ढूँढ़ता है और कल्पना की कलात्मक चूनरी उढ़ाकर वह उसे उपन्यास के रूप में प्रस्तुत करता है। दार्शनिक चिन्तन के सहारे, प्रत्येक उपन्यासकार, अपने पात्रों के स्वभाव और उनकी चरित्रगत प्रवृत्तियों का मूल स्रोत ढूंढ़ता है।

उपन्यासकार मानवजीवन का व्याख्याकार है परन्तु वह उपन्यास-रचना करते समय अपने निजत्व, व्यक्तित्व तथा हृदय एवं बुद्धि को नहीं छोड़ सकता। उपन्यासकार भाव पक्ष द्वारा उपन्यास में वर्णित दार्शनिकता की वोझिलता और शुष्कता को दूर करके उसे सरसता से सराबोर कर देता है। जीवन की व्याख्या करते समय उपन्यासकार के मनोभावों की छाया तो उपन्यास पर पड़ती ही है उसके जीवन-दर्शन की छाप पड़ना भी अनिवार्य है। जीवन-दर्शन के अन्तर्गत उपन्यासकार के मत और विश्वास, नैतिक आदर्श और मूल्य तथा मान्यतायें और धारणायें आती हैं। उपन्यास पर उपन्यासकार के व्यक्तित्व और चिन्तन की छाया अवश्य पड़ती है। जैनेन्द्र ने इस भाव को व्यक्त करते हुए कहा है "साहित्य, साहित्यिक आत्मा को व्यक्त करता है।"[२]

उपन्यासकार का नैतिक आदर्श एवं विश्वास तथा उसका जीवन-दर्शन उसकी रचनाओं में गुंफित रहता है। फलतः उपन्यास रचना और नैतिकता में कोई अन्तर नहीं रह जाता।

उपन्यासकार का यह नैतिक कर्तव्य माना गया है कि उसके उपन्यास में आत्माभिव्यक्ति की सच्चाई हो। उपन्यासकार का चिन्तन जितना सच्चा होगा, रचना भी उतनी ही श्रेष्ठ होगी। उपन्यास की श्रेष्ठता उसकी आत्माभिव्यक्ति की सच्चाई पर निर्भर है। अतः नैतिकता और साहित्यिक श्रेष्ठता एकरूप हो जाती है। अज्ञेय का कथन है "अपनी सृष्टि के प्रति कलाकार में एक दायित्व भाव रहता है। अपनी चेतना के गूढ़तम स्वर में वह स्वयं अपना आलोचक बनकर जाँचता रहता है कि जो उसके विद्रोह का फल है, जो समाज को उसकी देन है, वह क्या सचमुच इतना आत्यन्तिक मूल्य रखती है कि उसे प्रमाणित कर सके, सिद्धि दे सके? इस प्रकार कथावस्तु की रचना का एक नैतिक मूल्यांकन

---

१. प्रेमचन्द : कुछ विचार, पृ० ४७।

२. जैनेन्द्रकुमार : साहित्य का श्रेय और प्रेय, पृ० ३१७।

निरन्तर होता रहता है।"

उपन्यास में उपन्यासकार के जीवन-दर्शन का प्रतिबिम्ब तो रहता ही है, समाज की प्रचलित नैतिक व्यवस्था और नैतिक आदर्शों का भी उस पर गहरा प्रभाव पड़ता है। प्रेमचन्द ने इसे स्वीकार करते हुए कहा है—"साहित्य अपने काल का प्रतिबिम्ब होता है। जो भाव और विचार लोगों के हृदयों को स्पंदित करते हैं, वही साहित्य पर भी छाया डालते हैं।"[१]

---

१. प्रेमचन्द : कुछ विचार, पृ० ४५।

२ : : वर्माजी के पूर्ववर्ती उपन्यासकार एवं नैतिकता

उपन्यास और नीति का सम्बन्ध अन्य विषयों की अपेक्षा प्राचीनतर है। पूर्ववर्ती हिन्दी उपन्यास साहित्य में भी प्रायः नीति-तत्त्वों का समावेश किया गया है। हमारे साहित्य में नीति-प्रधान कथा-साहित्य की एक स्वतन्त्र, सुपुष्ट और सुदीर्घ परम्परा मिलती है। साहित्य के माध्यम से किसी आध्यात्मिक उपदेश की योजना करना नीति कथा-साहित्य का मुख्य आधार तथा उद्देश्य रहा है।

उपन्यास-साहित्य के प्रथम चरण में मानव-जीवन के चित्रण तथा व्याख्या को गौण स्थान प्राप्त था। उपन्यासकार या तो कुतूहल-सृष्टि करके लोकरंजन करते थे अथवा सदाचार के उपदेश देकर लोक-शिक्षा देने में रत थे। दार्शनिक दृष्टिकोण अथवा जीवन की विविधता को उपन्यस्त न कर उपन्यासकार उपदेष्टा अथवा मनोरंजनकर्ता के रूप में हमारे सामने आते हैं। नीति की शिक्षा देने के लिये उपन्यासकार नीति-वचनों को इधर-उधर से एकत्र करके अपने उपन्यास में सजा देते थे। वर्माजी के पूर्ववर्ती उपन्यासकारों के सामाजिक एवं ऐतिहासिक उपन्यासों में नीति-वचनों का बाहुल्य दृष्टव्य है।

सामाजिक उपन्यास

श्रीनिवासदास : परीक्षा गुरु

हिन्दी के आदि उपन्यासकार ला० श्रीनिवासदास ने अपने उपन्यास 'परीक्षा गुरु' के निवेदन में नीति-वचनों के चयन के सम्बन्ध में कहा है, "इस पुस्तक के रचने में मुझ को महाभारतादि संस्कृत, गुलिस्तान वगैरह फ़ारसी, स्पेक्टेटर, लार्ड बेकन, गोल्डस्मिथ, विलियम कूपर आदि के पुराने लेखों और स्त्री-बोध आदि के वर्तमान रिसालों से बड़ी सहायता मिली है।" उन्होंने अपने इस उपन्यास के प्रत्येक परिच्छेद का आरम्भ नीति-वचनों से किया है। बीच-बीच में भी नीति-वचन पिरोये गये हैं जिससे कि पाठक को नीति की शिक्षा मिलती रहे।

इस उपन्यास की रचना श्रीनिवासदास ने अंग्रेजी उपन्यासों के आधार पर की है। लेखक ने प्रेम के अतिरिक्त जीवन के अन्य पक्षों पर भी दृष्टि डालने का

प्रयास किया है। उपन्यास में दिल्ली के एक सेठ की कहानी है जो चाटुकारों की मिथ्या प्रशंसा से दिग्भ्रमित हो जाता है। बाहरी तड़क-भड़क तथा आडम्बरों के चक्कर में पड़कर भिखारी बन जाता है तथा ऋण के बोझ से लद जाता है। सच्चा मित्र उसे इस दलदल से बाहर निकालकर सत्-मार्ग की ओर अग्रसर करता है। इस उपन्यास में लेखक ने नैतिक शिक्षा द्वारा मार्गदर्शन का प्रयास किया है।

'परीक्षा गुरु' का चित्रपट काफी चौड़ा है और उस पर तत्कालीन नागरिक समाज की सभी प्रमुख प्रवृत्तियाँ अंकित हैं। कथानक में उपदेशात्मकता का प्राचुर्य है, परन्तु यथार्थ जीवन के चित्रण के आधार पर एक सोद्देश्य और प्रसरणशील कथा का नियोजन है। चरित्रों में मानवीयता है, अतः पात्र जीते-जागते मनुष्यों के रूप में सामने आते हैं। यह उपन्यास चूंकि एक नये मध्यवर्गीय व्यापारी की स्थिति का चित्रण है, इसलिये दो पीढ़ियों का वैषम्य भी सांकेतिक रूप में स्पष्ट होता है।[1]

डा० मक्खनलाल शर्मा ने 'परीक्षा गुरु' को शुद्ध यथार्थवादी उपन्यास माना है। उनके मतानुसार शुद्ध यथार्थवादी उपन्यासकार पाठकों को सीधी शिक्षा देने के लिये लिखते हैं। उनका उद्देश्य सदैव भलाई और बुराई, पुण्य और पाप को पात्रों के रूप में प्रस्तुत करना होता है। इसमें उनका आग्रह वास्तविकता पर उतना नहीं रहता, जितना उपदेश पर। डा० शर्मा ने 'परीक्षा गुरु' उपन्यास को नीतियों का संग्रह माना है। जीवन की यथार्थता और खरेपन का जो चित्रण इसमें है, वह नीति की "खटाई में मिठाई" का संयोग कहा जा सकता है।[2]

'परीक्षा गुरु' उपन्यास, समकालीन जीवन के यथार्थ चित्रण की दृष्टि से एक सफल उपन्यास है, जिसमें तत्कालीन सामाजिक व राष्ट्रीय समस्याओं का स्पर्श किया गया है। अपव्यय की हानि और मितव्ययता के लाभ दिखाये गये हैं। यह एक बुद्धिवादी उपन्यास है, जिसमें उपदेशों और नैतिक शिक्षाओं का बाहुल्य है। काल्पनिक यथार्थ की भित्ति पर आदर्श की स्थापना ही कथाकार का उद्देश्य है।[3]

पं० बालकृष्ण भट्ट नूतन : ब्रह्मचारी

पं० बालकृष्ण भट्ट के 'नूतन ब्रह्मचारी' और 'सौ अजान एक सुजान'

---

१. डा० वेचन : 'आधुनिक हिन्दी कथा-साहित्य और चरित्र-विकास', पृ० १०३-४।
२. डा० मक्खनलाल शर्मा : 'हिन्दी उपन्यास, सिद्धान्त और समीक्षा', पृ० २५३।
३. डा० कैलाश प्रकाश : 'प्रेमचन्द पूर्व हिन्दी उपन्यास', पृ० ९८-९९।

नामक उपन्यास भी नैतिक शिक्षाओं से भरे हैं । लेखक ने 'नूतन ब्रह्मचारी' के निवेदन में कहा है "हमारी इस पुस्तक को पढ़ने से पाठकों को अवश्य मालूम हो जायेगा कि बालकों के लिये यह कितनी शिक्षाप्रद है और शिक्षा-विभाग में जारी होने से हमारे कोमल बुद्धिवाले बालकों को कितनी उपकारी हो सकती है।" इस उपन्यास में लेखक का उद्देश्य बालकों को अच्छे संस्कार देना तथा अच्छी शिक्षा प्रदान करना है जिससे वे देश को उन्नति के शिखर पर पहुँचा सकें।

इस उपन्यास में विट्ठलदास और उनकी पत्नी की काल्पनिक कथा है। ये दोनों आदर्श पति-पत्नी के रूप में चित्रित हैं। सरदार का व्यक्तित्व दुर्बल है। वह पहले अच्छे संस्कारों में पलता है फिर कुसंगति में पड़ता है तथा अन्त में अपना सुधार करता है। उसमें भौतिक जीवन की महत्त्वाकांक्षा का अभाव है। छात्रों और नवयुवकों के लिये वह एक आदर्श है। इस उपन्यास में "नीति-वाक्यों के प्रभाव में खुशामदी और अपव्ययी तथा देश-दशा के प्रति उदासीन लोगों की निंदा, तथा एकता का समर्थन किया गया है।"[1]

सौ अजान एक सुजान

पं० बालकृष्ण भट्ट के दूसरे उपन्यास 'सौ अजान एक सुजान' में भी उनकी दृष्टि आदर्शों की स्थापनाओं पर ही केन्द्रित रही। इस उपन्यास में सेठ हीराचन्द और उसके पौत्र सिद्धनाथ की कथा है। सेठ की मृत्यु के पश्चात् सिद्धनाथ कुसंगति में पड़कर पतन की ओर अग्रसर होता है। चन्द्रशेखर उसका हितैषी तथा शिक्षक है। वही उपन्यास का सुजान है। इस उपन्यास में हुमा बेगम और हमीम साहब की अर्न्तकथा रूप और धन की विकृतियों को स्पष्ट करती है।

'सौ अजान एक सुजान' में लेखक ने नीति-शिक्षा को प्रमुखता दी है। उपन्यास के प्रमुख पृष्ठ पर ही संस्कृत का श्लोक उपन्यास के उद्देश्य को स्पष्ट करने में पूर्ण समर्थ है "हे जीव, तू शीघ्र ही दुष्टों की संगति छोड़ और सत्संग को प्राप्त कर।" उपन्यास की समाप्ति पर लेखक उपदेश देता हुआ कहता है "अन्त में हम अपने पढ़ने वालों को सूचित करते हैं कि आप लोगों में यदि कोई अबोध और अजान हों तो हमारे उपन्यास को पढ़ आशा करते हैं सुजान बनें। इस किस्से के अजानों को सुजान करने को चन्दू था, आप लोगों को हमारा यह उपन्यास होगा।"

---

१. डा० कैलाश प्रकाश : 'प्रेमचन्द पूर्व हिन्दी उपन्यास', पृ० १०६।

पं० देवीप्रसाद शर्मा उपाध्याय : सुन्दर सरोजनी

पं० देवीप्रसाद शर्मा उपाध्याय का उपन्यास 'सुन्दर सरोजनी' भी इसी क्रम की एक कड़ी है। यह एक स्वप्नदर्शन-जन्य सफल प्रेम की कहानी है। सुन्दर स्वप्न में सरोजिनी के मन-मोहक रूप पर मुग्ध होकर उससे प्रगाढ़ प्रेम करने लगता है। अनेक विघ्न बाधायें आती हैं परन्तु अन्त में वह सब बाधाओं को पार करके उसे प्राप्त करता है। इस मिलन को कथाकार सत्य-प्रेम, धर्म-महिमा और ईश्वर-भक्ति का प्रभाव मानता है। यह कथा मध्यकालीन लोक-कथाओं के समानान्तर रखी जा सकती है।[१]

इस उपन्यास में लेखक ने अंग्रेजी सभ्यता को भारतीय जीवन के लिये घातक माना है तथा भारतीय संस्कृति अपनाने का उपदेश दिया है। वह उपन्यास में स्वयं प्रकट होकर कहता है, "पाठक भ्रम में न पड़ें कि आजकल के नये नायक-नायिका हैं और यहाँ कोर्ट शिप का अवसर इन्होंने पाया है—महात्मा मदनदेव के अधिकार से जो प्रेम उपजता है, वह मैत्रीकृत नहीं, किन्तु कामकृत है।"[२] उपन्यास में अंग्रेजों की व्यापार-नीति तथा भारतीयों की दुर्दशा का चित्रण है।

किशोरीलाल गोस्वामी

गोस्वामीजी सामाजिक उपन्यासों में निश्चित आदर्शों को लेकर चले हैं। सनातन धर्म में उनकी दृढ़ आस्था थी तथा वे चाहते थे कि भारतवासी विदेशी साहित्य एवं शिक्षा का मोह छोड़ें और भारत के प्राचीन साहित्य की धरोहर से अपना पथ प्रशस्त करें।[३]

लेखक बाल-विवाह तथा स्त्री-शिक्षा का समर्थक है। वह कहता है कि भारतीय धर्म, संस्कृति और शिक्षा के वातावरण में जब तक भारतीय समाज का नव संस्कार नहीं होगा, तब तक इस देश का उद्धार असम्भव है।[४]

गोस्वामीजी के उपन्यासों में नीति विषयक सूक्तियों की भरमार है और "धर्म की जय" और "अधर्म की पराजय" उनके अधिकांश उपन्यासों का निष्कर्ष है।

---

१. डा० कैलाश प्रकाश : 'प्रेमचन्द पूर्व हिन्दी-उपन्यास', पृ० ११७।
२. सुन्दर सरोजनी, पृ० ३६।
३. किशोरीलाल गोस्वामी : त्रिवेणी वा सौभाग्य श्रेणी, पृ० ३५।
४. डा० शान्ति भारद्वाज : 'हिन्दी उपन्यास—प्रेम और जीवन', पृ० ८३।

त्रिवेणी वा सौभाग्य श्रेणी

इस उपन्यास में मनोहरदास एक धर्मपरायण व्यक्ति है। वह अपनी पत्नी से विरक्त हो जाता है और पुनः उससे आ मिलता है। उपन्यास के सभी पात्र जैसे ईश्वर की आज्ञा को शिरोधार्य करके कर्त्तव्य-पालन करते हैं।[१] लेखक ने इस उपन्यास में वर्णाश्रम धर्म तथा श्राद्ध का समर्थन किया है तथा विदेशी साहित्य त्यागने का उपदेश दिया है।

लीलावती या आदर्श सती

इस उपन्यास का शीर्षक ही नीति का उद्घोष करता है। इस उपन्यास में लेखक ने तुलनात्मक चित्रण द्वारा सनातन धर्म तथा समाज की श्रेष्ठता प्रतिष्ठापित की है तथा अंग्रेज़ी प्रभाव को दूषित तथा त्याज्य बताया है।

लीलावती आदर्श भारतीय महिला है जिसका चरित्र स्वच्छ, पवित्र तथा अनुकरणीय है। वह ललितकुमार से प्रेम करती है। उसका प्रेम सच्चा और पवित्र है। उसीकी बहन कलावती भारतीय आदर्शों का परित्याग करके अपने प्रेमी के साथ गृह-त्याग करती है तथा 'सिविल मैरिज' कर लेती है। इस विवाह से वह संतुष्ट नहीं हो पाती, फलतः एक नौकर के साथ और फिर एक अन्य व्यक्ति के साथ भागती है। उसे जीवन में सुख, शान्ति तथा सन्तोष प्राप्त नहीं हो पाता।

मालती माधव वा मदनमोहिनी

इस उपन्यास में लेखक ने स्पष्ट किया है कि यदि प्रेम सच्चा हो तो उसकी सुविधा भगवान जुटा देता है। धर्म से काम की प्राप्ति होती है। संयम सुख का मूल है तथा असंयमित जीवन समाज का कोढ़ है।

अपनी इन मान्यताओं को लेखक ने धर्मपरायण ब्राह्मण परिवार की कहानी के माध्यम से उपस्थित किया है।

अंगूठी का नगीना

इस उपन्यास में जमींदार-पुत्र मदनमोहन की सच्चरित्रता तथा आदर्शवादिता की कथा गुंफित है। वह लक्ष्मी के आकर्षण से आबद्ध होकर उससे अगाध प्रेम करने लगता है। उसका प्रेम सच्चा है परन्तु वह संकोच के कारण अपने मनो-

---

१. डा० कैलाश प्रकाश : 'प्रेमचन्द-पूर्व हिन्दी उपन्यास', पृ० १२६।

गत भाव अपनी प्रेमिका पर प्रकट नहीं कर पाता। उसके प्रेम की दृढ़ता इन शब्दों में प्रकट होती है "मेरा हृदय किसी दूसरे के पास है, इसलिये अब इस जिन्दगी में सिवाय उस सुन्दरी के मैं किसी नारी का मुँह कभी नहीं देखूँगा।"[1] लक्ष्मी के मन-मन्दिर का देवता भी मदनमोहन है परन्तु शील, संकोच तथा लज्जा के कारण वह मुखरा वनकर अपने भाव प्रकट नहीं कर पाती और अन्त में गंगा में प्राण त्यागने को तत्पर हो जाती है। अन्त में उसे इच्छित जीवन-साथी प्राप्त होता है।

लज्जाराम शर्मा

लज्जाराम शर्मा के उपन्यासों में भी उपदेश और नीति-वचन भरे पड़े हैं। अपने उपन्यासों द्वारा लेखक जनता को सन्मार्ग की ओर अग्रसर करता है।

बिगड़े का सुधार

इस उपन्यास में पति, पत्नी पर अत्याचार करता है। उसके जीवन में उच्छृं-खलता है। वह दुराचारी एवं अन्यायी है। उसकी पत्नी आदर्श भारतीय ललना है। वह पति के अत्याचारों को नत-शिर होकर सहन करती है, धर्म का दामन नहीं छोड़ती और अन्त में पति को सन्मार्ग पर ले आने में सफल होती है।

पति विलायती सभ्यता एवम् संस्कृति का अन्ध-भक्त है और होटल की 'मेम' नौकरानी से विवाह रचा बैठता है। जैसे ही मेम पर उसके विवाहित होने का भेद खुलता है वह उसे त्याग देती है तथा सम्वन्ध-विच्छेद कर लेती है। पतिव्रता पत्नी उसे सन्मार्ग पर लाती है।

आदर्श हिन्दू

इस उपन्यास में लेखक ने सनातन-धर्म की श्रेष्ठता प्रतिपादित की है। इसमें लेखक ने सामाजिक त्रुटियों का उल्लेख किया है तथा राज-भक्ति तथा भगवत-भक्ति का माहात्म्य चित्रित किया है। इस उपन्यास में लेखक ने कुशिक्षा तथा कुसंगति को पतन का मूल माना है।

गंगाप्रसाद गुप्त

लेखक भारतीय सभ्यता तथा संस्कृति का प्रबल समर्थक है। वह पाश्चात्य शिक्षा तथा संस्कृति को भारतीय कुल-ललनाओं के लिये दूषित समझता है।

---

१. किशोरीलाल गोस्वामी : 'अंगूठी का नगीना', पृ० १०६।

लक्ष्मीदेवी

इस उपन्यास में लेखक नारी के चरित्र-दोष को एक क्षण भी सहन करने के लिये तैयार नहीं। वह क्रोध में भरकर कह उठता है "गिरी हुई स्त्री को उसी प्रकार निकाल देना चाहिये जिस प्रकार सड़े हुये अंग विशेष को शरीर से अलग कर दिया जाता है।"[१] अपनी इस धारणा की पुष्टि के लिये लेखक श्यामा के दूषित चरित्र को प्रकाश में लाता है। उसकी चारित्रिक हीनता तथा उच्छृंखलता का कारण 'विलायती शिक्षा' मानता है। उसकी बहन लक्ष्मी कुशल डाक्टर बनकर घर तथा समाज की सेवा करती है। डाक्टरी पढ़कर वह विलायती रंग में रंग नहीं जाती, अपितु भारतीय संस्कृति का पालन कर आदर्श उपस्थित करती है। आर्य समाज से प्रभावित लेखक नारी को वैदिक संस्कृति के आलोक से आवेष्ठित देखना चाहता है।

टीकाराम तिवारी : पुष्प कुमारी

लेखक ने अपने 'पुष्प कुमारी' उपन्यास में नारी की आध्यात्मिक उच्चता को प्रतिष्ठापित किया है। इस उपन्यास में सद्गृहस्थ के आदर्शों पर लेखक की लेखनी चली है। सम्मिलित परिवार की श्रेष्ठता दिखाने के लिये लेखक ने ललिता और माधव की कहानी कही है। ललिता को उसकी माँ द्वारा कुशिक्षा मिली है। वह पति-गृह आकर कलह करती है और पति को बाध्य करती है कि वह अलग घर लेकर रहे। पति उसकी बातों में आकर पिता से अलग हो जाता है परन्तु कुछ समय पश्चात् वह पश्चात्ताप और आत्म-ग्लानि से भर उठता है और सम्मिलित कुटुम्ब के लाभ देखकर पुनः कुटुम्ब में सम्मिलित हो जाता है। दूसरी ओर पुष्पा और कमल के आदर्श प्रेम की कहानी है। कमल, पुष्पादेवी को विपत्तियों से छुटकारा दिलाता है। पुष्पा उसके चरणों में अपना सर्वस्व समर्पित कर बैठती है और उनका विवाह सम्पन्न हो जाता है। ज्योतिषी गणना करके बताते हैं कि पुष्पा को अठारह वर्ष की आयु में वैधव्य दुख भोगना होगा। वह इन कुग्रहों को टालने के लिये घोर तपश्चर्या करती है। अतः ग्रह टल जाते हैं तथा पति दीर्घजीवी हो जाता है। इस उपन्यास में पुष्पा प्राचीनकाल की सतियों की याद दिलाती है।

रुद्रदत्त शर्मा स्वर्ग में महासभा

लेखक ने 'स्वर्ग में महासभा' उपन्यास द्वारा जन-मानस में ईश्वर-भक्ति के

---

१. लक्ष्मीदेवी, पृ० २८।

भाव भरने की चेष्टा की है। मानव-मन को धर्म तथा सत्य की ओर उन्मुख करने का प्रयास किया है। लेखक ने अपने उपन्यास में कर्मफल का समर्थन, पैगम्बर-वाद का खण्डन, पुराण-पन्थियों पर आक्रमण, अंग्रेज़ी राज्य पर कटाक्ष और मानव-मात्र के प्रति सम-भाव का समर्थन किया है। लेखक ने अंग्रेजी राज्य की तुलना असुर-राज से की है और जनतंत्र के समर्थन में प्रत्येक नागरिक को एक मत का अधिकारी घोषित किया है।[1]

श्रीकृष्णलाल वर्मा : चम्पा

वर्माजी के 'चम्पा' उपन्यास में उपदेशात्मकता का प्राचुर्य है। लेखक ने वृद्धावस्था में दूसरे विवाह के दोष इस उपन्यास में उपन्यस्त किये हैं। वह आर्य समाज से प्रभावित है और कन्या-विक्रय तथा पर्दा-प्रथा का डटकर विरोध करता है तथा शिक्षा को सामाजिक उन्नति का आधार मानता है।

'चम्पा' उपन्यास में पत्नी की मृत्यु के उपरान्त मनोहरलाल, सुनहरी नामक अल्पवयस्क किशोरी से विवाह कर लेता है। विवाह से पूर्व उसे सुनहरी के भाइयों को रुपया देना पड़ता है। सुनहरी मनोहरलाल की पुत्री चम्पा को नाना प्रकार से कष्ट देती है। चम्पा को अपने मार्ग से हटाने के लिये सुनहरी अपने पति को विष दे देती है और इसका आरोप चम्पा पर लगाती है। रहस्य, रहस्य नहीं रह जाता और भेद खुलने पर सुनहरी को काले पानी की सज़ा प्रदान की जाती है तथा चम्पा आदर्श गृहिणी के प्रतिष्ठित पद पर आरूढ़ होती है।

ब्रजनन्दन सहाय : राधाकान्त

लेखक 'राधाकान्त' उपन्यास की भूमिका में लिखता है कि—

(१) भविष्य में उपन्यास ही के सहारे लोग समाज, देश तथा जाति की रीति-नीति एवम् आचार-विचार से अवगत होंगे।

(२) यह कभी नहीं चाहिये कि अंग्रेज़ी उपन्यासों के आधार पर जो चाहा लिख दिया।

(३) आजकल के अधिकांश उपन्यास ऐसे हैं, जिसमें पात्रों का चित्रण और भावों का वर्णन नहीं।

(४) ऐसी पुस्तकों की कोई सार्थकता नहीं जो पाठकों पर बुरा चारित्रिक प्रभाव डालें ?[2]

---

१. डा० कैलाश प्रकाश : 'प्रेमचन्द-पूर्व हिन्दी-उपन्यास', पृ०, १६२।
२. ब्रजनन्दन सहाय : राधाकान्त भूमिया।

लेखक के विचारों से सहज ही यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि वह समाज, देश तथा जाति की रीति-नीति, आचार-विचार तथा चारित्रिक श्रेष्ठता के लिये उपन्यास को माध्यम मानता है। वह पाठक को सन्मार्ग पर ले जाने के लिये विशेष रूप मे सचेष्ट है अतः उसके उपन्यासों में नैतिक शुचिता सहज ही ध्यान आकृष्ट करती है।

मन्नन द्विवेदी

मन्नन द्विवेदी एक आदर्शवादी उपन्यासकार है। उसके उपन्यासों में उपदेशात्मकता की झाँकियाँ यत्र-तत्र देखने को मिल जाती हैं। अपने दोनों उपन्यासों 'रामलाल' और 'कल्याणी' में लेखक ने सामाजिक जीवन का विश्लेषण किया है। अधःपतन और कुरीतियों का चित्रण बड़ा मर्मस्पर्शी है। देश-प्रेम, जाति-सेवा, धर्म-आस्था तथा मानव-धर्म पर लेखक ने अनेक उपदेश दिये हैं।

रामलाल

प्रस्तुत उपन्यास में प्लेग में अनाथ हुआ रामलाल अनेक धर्म-स्थानों की ठोकरें खाता है और अन्त में प्रभु ईशु की शरण में जाता है। वहाँ उसका परिचय एनी शाहजादी से होता है। एनी रामलाल से प्रेम करने लगती है और ईसाई समाज से वाहर खींचना चाहती है। रामलाल उस स्थान का परित्याग करके कठोर परिश्रम द्वारा धन प्राप्त करता है। एनी के प्रेम से प्रभावित होकर वह उसे खोजने चल पड़ता है।

"लेखक स्थान-स्थान पर हिन्दू समाज की दुर्दशा का चित्रण और सामाजिक प्रश्नों का विवेचन करता है। हिन्दू-धर्म के खोखलेपन की उसने हँसी उड़ाई है। वह नई सभ्यता को अच्छा नहीं समझता, परन्तु नये स्वस्थ सुधारों का स्वागत भी करता है। उसने बताया कि जन्म से मुसलमान और धर्म से ईसाई युवती भी भारतीय संस्कारों से सम्पन्न हो सकती है।......लेखक ने जाति प्रथा पर भी आघात किये।...नारी के उद्धार के लिये भी वह शिक्षा को ही आवश्यक मानता है। वह कहता है कि गुण, कर्म तथा स्वभाव देखकर युवक-युवतियों का विवाह कर देना चाहिये। श्राद्ध ज्योतिष व पुराण-पंथ पर वह प्रहार करता है। नायक रामलाल आनरेरी मजिस्ट्रेट बनकर स्वभाषा का भी समर्थन करता है।"[1]

---

१. डा० शान्ति भारद्वाज : हिन्दी उपन्यास—प्रेम और जीवन, पृ० ९२।

ऐतिहासिक उपन्यास

उपन्यास के शैशवकाल में ऐतिहासिक उपन्यास भी प्रचुर मात्रा में लिखे गये, परन्तु अधिकांश उपन्यासकार ऐतिहासिकता के रक्षण के विषय में सचेष्ट नहीं हैं। कल्पना की ऊँची उड़ानों में उन्होंने ऐतिहासिक सत्य की हत्या कर दी है। इसमें सन्देह नहीं कि ये ऐतिहासिक उपन्यास कल्पना-लोक में अधिक विचरण करते हैं परन्तु उनमें भी नीति-वाक्य अथवा नैतिक उपदेश यत्र-तत्र देखने को मिल जाते हैं। धर्म-भीरु लेखक विलास, वासना, षड्यन्त्र, कुचक्र आदि का वर्णन करके नीति-सूक्तियों द्वारा मानो अपवित्रता का विष धो डालते हैं।

किशोरीलाल गोस्वामी

लेखक ने ऐतिहासिक उपन्यास लिखने की नींव डाली। इसके उपन्यासों में कुत्सित एवं विलासपूर्ण जीवन चित्रित हुआ है। वह स्वयं स्वीकार करता है कि अपने ऐतिहासिक उपन्यासों में उसने ऐतिहासिक घटना को गौण तथा कल्पना को मुख्य रखा है। कल्पना की ऊँची उड़ान में उसने ऐतिहासिक सत्य की भी चिन्ता नहीं की है और उसका मन राजमहलों के कुत्सित विलासपूर्ण जीवन, शाहजादा-शाहजादियों की इश्कमिजाजी, गुप्त-प्रणय सम्बन्ध, खूबसूरत बाँदियों एवं कुटनियों की करामातों में अधिक लगा है।[1] गोस्वामीजी ने दो दर्जन से भी अधिक ऐतिहासिक उपन्यास लिखे और उनमें प्रायः सभी में इसी प्रकार का चित्रण मिलता है।

लेखक ने क्योंकि सामाजिक, सुधारवादी एवं आदर्शवादी उपन्यास भी लिखे हैं इसलिए इन उपन्यासों में भी कहीं-कहीं नीति-वाक्य तथा उपदेश जुगनू की तरह प्रदीप्त हो उठते हैं यथा—

(१) विलासी जीवन का अन्त कष्टमय होता है (तारा वा क्षात्र-कुल कमलिनी)।

(२) यौवन, ऐश्वर्य, प्रभुत्व और अविवेक, मनुष्य के पतन के ये चार बड़े आकर्षण हैं (सुल्तान रज़िया बेगम, वा रंगमहल में हलाहल)।

(३) हिन्दुओं में कोई दोष है तो यह कि उनमें एकता नहीं है (हृदयहारिणी वा आदर्श रमणी)।

इस प्रकार ऐतिहासिक उपन्यासों में भी कहीं लेखक हिन्दू-मुस्लिम एकता के

---

१. शिवनारायण श्रीवास्तव : हिन्दी उपन्यास, पृ० ४५।

विषय में सचेष्ट है, कहीं सनातन धर्म की ध्वजा फहराने में संलग्न है, कहीं कर्म-फल और भाग्य में विश्वास करने वाला दृष्टिगत होता है तो कहीं देश-दुर्दशा को देखकर दुःखी प्रतीत होता है।

मथुराप्रसाद शर्मा—नूरजहां बेगम व जहाँगीर

शर्माजी ने भी उपन्यास रचना के लिए इतिहास से कथानक चुना है। उपन्यास में ऐतिहासिक नाम भर हैं, ऐतिहासिक तथ्यों का अभाव है, हाँ वातावरण अवश्य ऐतिहासिक है।

'नूरजहाँ बेगम व जहाँगीर' उपन्यास में जहाँगीर और नूरजहाँ की प्रेम-कहानी उपन्यस्त है। नूरजहाँ के जन्म, प्रेम, विवाह और विलास की कहानी लेखक ने मन लगाकर कही है। नूरजहाँ एक सन्तान के होते हुए भी सलीम को स्वीकार करती है तथा वैभव विलास में आकंठ डूब जाती है।

उपन्यास में ऐतिहासिक वातावरण में प्रेम-लीलाओं का वर्णन है, परन्तु लेखक बीच-बीच में नीति-मुक्ता भी पिरो देता है। वह ईश्वर लीला तथा उसकी महिमा का वर्णन करता हुआ कहता है कि इस जीवन और संसार का सुख पानी के बुलबुले के समान है जिसे न पैदा होते देर लगती हैं और न नाश होते।[१]

बृजनन्दन सहाय—लाल चीन

लेखक ने अपने उपन्यास का आधार गुलाम तुगलचीन अथवा लाल चीन को बनाया है। दक्षिण में सत्रह वर्ष की आयु में गयासुद्दीन सिंहासनारूढ़ होता है। गुलाम तुगलचीन बादशाह से अत्यधिक रुष्ट है और उसके हृदय में प्रतिशोध तथा प्रतिहिंसा की अग्नि धधकती रहती है। वह अपनी पुत्री से आग्रह करता है कि वह प्रतिशोध लेने में उसकी सहायता करे। वह उसे रूप जाल में फँसाती है। तथा अवसर देखकर तुगलचीन बादशाह की आँखें निकाल लेता है। गुलाम की पुत्री लुत्फुन्निसा के दो प्रेमी हैं—गयासुद्दीन एवं शमसुद्दीन। लुत्फुन्निसा आगे चलकर पाप से अपना दामन बचाती है फलतः सुखी, संतुष्ट जीवन व्यतीत करती है।

लेखक यह उपदेश देना चाहता है कि पापमय जीवन अशान्ति एवं दुर्दशा का कारण है तथा सुखी, संतुष्ट जीवन के लिए पाप-त्यागकर पवित्र जीवन व्यतीत करना अनिवार्य है।

---

१. नूरजहाँ बेगम, पृ० ५।

मिश्रबन्धु : वीरमणि

मिश्र वन्धु ने 'वीरमणि', 'विक्रमादित्य' एवं 'पुण्यमित्र' नामक ऐतिहासिक उपन्यासों की रचना की है। 'वीरमणि' उपन्यास में लेखक ने खैरावाद के नवाब की विलासिता तथा कामुकता का चित्रण किया है। वीरमणि की पत्नी नलिनी के सौन्दर्य पर नवाव आसक्त है और उसे अपने हरम में उठवा मँगाने के लिए अत्यन्त आतुर है। उधर धीर, गम्भीर, अध्ययनशीला नलिनी के मन-मन्दिर का देवता उसका बाल-मित्र ललित है। अतः वह अपने पति से विमुख तथा असंतुष्ट है। नवाब कुचक्र रचना करके उसे ललित के पास पहुँचा देने का आश्वासन देकर पकड़ मँगवाता है। फिर ललित के उपदेशामृत से उसके हृदय की कुवासनाएँ दूर होती हैं और वह ललित को भाई वना लेती है।

लेखक ने इस उपन्यास में यह स्पष्ट कर दिया है कि नलिनी पाप पर उतरी तो ईश्वर ने उसे दण्ड दिया। इस उपन्यास में लेखक ने हिन्दू धर्म के माहात्म्य को स्थापित किया है। ज्ञान, कर्म, उपासना और मूर्ति-पूजा पर श्रद्धा प्रकट करके अपना विश्वास प्रकट किया है। उसने कर्म-फल को भी स्वीकार किया है तथा सती-प्रथा की भी निन्दा नहीं की है क्योंकि वह विवाह सम्बन्ध एक जन्म का नहीं जन्म-जन्म का सम्बन्ध मानता है।

उपर्युक्त उपन्यासों पर दृष्टिपात करने से यह स्पष्ट होता है कि उपन्यास—विकास के प्रथम चरण में सामाजिक एवं ऐतिहासिक उपन्यासों में नीति-वाक्यों तथा उपदेशों का बाहुल्य है। घटनात्मक उपन्यास तथा तिलस्मी तथा जासूसी उपन्यास शुद्ध मनोरंजन के लिए लिखे गये हैं। अतः उनका सम्बन्ध मानव-जीवन अथवा मानव-आचरण से नहीं है। इन उपन्यासों में लेखकों को नीति-वचनामृतों द्वारा मानव-समाज को सन्मार्ग पर ले आने का मानो अवकाश ही नहीं है। प्रेमचन्द ने इस काल की काल्पनिक और मनोरंजन-प्रधान औपन्यासिक रचनाओं के वारे में लिखा है—"हमारे साहित्यकार कल्पना की एक सृष्टि खड़ी करके उसमें मनमाने तिलस्म बाँधा करते थे। कहीं फ़िसानये अजब की दास्तान थी, कहीं वोस्ताने ख़याल की और कहीं चन्द्रकान्ता सन्तति की। इन आख्यानों का उद्देश्य केवल मनोरंजन था और हमारे अद्भुत-रस प्रेम की तृप्ति, साहित्य का जीवन से कोई लगाव है, यह कल्पनातीत था।[1]

अधिकांश सामाजिक एवं ऐतिहासिक उपन्यासों का उद्देश्य समाज-कल्याण

---

१. प्रेमचन्द : कुछ विचार।

रहा। इन उपन्यासों में कहीं व्यक्ति विशेष को लक्ष्य करके कर्त्तव्यानुकूल आचरण की शिक्षा दी गई है तो कहीं समाज को सन्मार्ग की ओर लेजाने का आग्रह है। किन्हीं उपन्यासों में उपदेशों को अत्यन्त सुव्यवस्थित उदाहरणों म पुष्ट किया गया है तो किन्हीं उपन्यासों में मनोरम ढंग से कथा कहकर निष्कर्ष स्वरूप नीति-सूक्तियों को गुंफ़ित किया गया है।

प्रेमचन्द

प्रेमचन्द ने उपन्यास की प्रचलित परम्परा त्यागकर नये विषयों पर उपन्यास लिखने प्रारम्भ किए। उपन्यास साहित्य को कल्पना के इन्द्रलोक से उतार कर यथार्थ की ठोस भूमि पर प्रतिष्ठित किया। हिन्दी उपन्यास की बाल्यावस्था में प्रेमचन्द का आविर्भाव अवश्य हुआ, परन्तु अपने सशक्त उपन्यासों द्वारा उन्होंने उपन्यास-साहित्य को बाल्यकाल से निकालकर एकदम यौवन तक पहुँचा दिया।

प्रेमचन्द के जीवन-दर्शन का मूलाधार मानववाद है। इस मानववाद को अपने जीवन-दर्शन का मूलाधार बनाने के कारण प्रेमचन्द ने मानव को सर्वोपरि माना है, तथा उसके हित के आलोक में सदाचार एव सद्गुण, अच्छाई एवं बुराई, पाप और पुण्य आदि का मूल्यांकन किया है।

जीवन की सार्थकता वे प्रेम, सेवा और त्याग में समझते थे; भोग और संग्रह में नहीं। उन्होंने अपनी रचनाओं में प्रेम, सेवा और त्याग की लक्ष्यत्रयी को ही बार-बार दोहराया और इसे सर्वोच्च नैतिक आदर्श के रूप में प्रस्तुत किया।[१]

प्रेमचन्द के साहित्य में धर्म और नीति-शास्त्र के विशिष्ट कर्त्तव्यों को उच्च स्थान मिला है। प्रेमचन्द ने कहा है, "नीति शास्त्र और साहित्य शास्त्र का लक्ष्य एक ही है। केवल उपदेश की विधि में अन्तर है। नीति शास्त्र तर्कों और उपदेशों के द्वारा बुद्धि और मन पर प्रभाव डालने का प्रयास करता है, साहित्य ने अपने लिये मानसिक अवस्थाओं और भावों का क्षेत्र चुन लिया है।[२] अतः प्रेमचन्द ने अपने उपन्यासों में नैतिकता को उच्च धरातल पर प्रतिष्ठित कर दिया है।

प्रेमचन्द, उपन्यास-साहित्य को मनोरंजन और विलासिता की वस्तु नहीं समझता। उसका कथन है"हमारी कसौटी पर वही साहित्य खरा उतरेगा, जिसमें चिन्तन हो, स्वाधीनता का भाव हो, सौन्दर्य का सार हो, सृजन की आत्मा हो, जीवन की सच्चाइयों का प्रकाश हो, जो हममें गति, संघर्ष और बेचैनी पैदा करे,

---

१. हिन्दी उपन्यास का विकास और नैतिकता, पृ० ५१-५२।
२. प्रेमचन्द : कुछ विचार, पृ० ७।

सुलाये नहीं···जिस उपन्यास को समाप्त करने के बाद पाठक अपने अन्दर उत्कर्ष का अनुभव करे, उसके सद्भाव जाग उठें, वही सफल उपन्यास है।"[१]

निर्मला

निर्मला प्रेमचन्द का प्रथम उपन्यास है। इस उपन्यास में प्रेमचन्द ने नारी-जीवन की करुणा को बड़ी कलात्मकता एवं सहानुभूति के साथ प्रस्तुत किया है। इस उपन्यास में अनमेल विवाह, दहेज तथा आर्थिक अभाव की समस्याओं का अंकन हुआ है। दहेज की व्यवस्था न कर पाने के कारण निर्मला के पिता उसका विवाह योग्य वर से न कर पाये। कन्या-भार से मुक्ति प्राप्त करने के लिये उन्हें वृद्ध, जर्जर, रोगी एवं तीन वयस्क पुत्रों के पिता वकील तोताराम की शरण में जाना पड़ा।

मुन्शी तोताराम सुन्दरी एवं युवती निर्मला के चरित्र पर सन्देह करने लगता है। उसकी मानसिक विकृति इतनी बढ़ जाती है कि वह मनसाराम और विमाता निर्मला के पवित्र एवं शुद्ध वात्सल्य के प्रति भी शंकालु हो उठता है। अपनी कामुकता तथा मानसिक वासना के प्रवाह में वह यहाँ तक सोच बैठता है कि मनसाराम तथा निर्मला के बीच अनुचित शारीरिक सम्बन्ध हैं।

अनमेल विवाह का दुष्परिणाम यह होता है कि तोताराम के ज्येष्ठ पुत्र मनसाराम की सन्देह तथा पारिवारिक कटुता के कारण मृत्यु हो जाती है, मँझला पुत्र आत्महत्या कर लेता है तथा छोटा पुत्र सियाराम साधु के चक्कर में गृह-त्याग देता है। तोताराम की आर्थिक स्थिति बिगड़ जाती है और वह पुत्र की तलाश में निकल पड़ता है। निर्मला भी मृत्यु को प्राप्त होती है।

सामाजिक कुप्रथायें समाज की नैतिकता को मानो चुनौती देती हैं। प्रेमचन्द इस चुनौती को स्वीकार करता है। वह दहेज और दोहाजू विवाह की कुप्रथाओं के कुसंस्कारों को चित्रित करके समाज की आँखें खोलने का प्रयास करता है। वह निर्मला के रूप में भारतीय नारी की मर्यादा का चित्र खींचकर समाज के हृदय में नारी के प्रति करुणा एवं सहानुभूति जगाना चाहता है।

सेवासदन

सुमन का विवाह गजाधर से कर दिया जाता है। उसे पति-गृह में न प्रेमपूर्ण व्यवहार प्राप्त होता है न धन, वैभव। वह ऐसे वातावरण तथा स्नेह-विहीन

---

१. प्रेमचन्द : कुछ विचार।

व्यवहार से विद्रोह करके गृह-त्याग देती है और प्रतिक्रिया के आवेश में वेश्या वन जाती है।

'सेवासदन' में प्रेमचन्द ने सुमन के पतन की ओर साथ ही साथ उसके उत्थान की कहानी भी कही है। प्रेमचन्द ने दहेज-प्रथा, अनमेल-विवाह और नारी-अनादर को सुमन के पतन का कारण वताया है। नारी को वेश्या वनाने में समाज का वड़ा हाथ है, ऐसी उसकी मान्यता है। यदि इस प्रकार की कुप्रवृत्तियाँ मानव समाज में न होतीं तो हमारी ही मातायें और वहिनें कभी भी रूप का वाज़ार लगाकर नहीं वैठतीं। यह हमारी ही कुवासनायें, हमारे ही सामाजिक अत्याचार, हमारी ही कुप्रथायें हैं, जिन्होंने वेश्याओं का रूप धारण कर लिया है। यह दाल-मण्डी हमारे ही कलुषित जीवन का प्रतिविम्व, हमारे ही पाशविक अधर्म का साक्षात् स्वरूप है।[1]

नारी को पतितावस्था से ऊपर उठाने का एकमात्र उपाय प्रेमचन्द ने सेवा-वृत्ति में ढूँढ़ा है। सुमन, सेवा-भाव अपनाती है, जिससे उसका उत्कर्ष होना प्रारम्भ हो जाता है। गजाधर पाण्डे और पद्मसिंह शर्मा भी सेवा-मार्ग अपनाते हैं और वेश्यावृत्ति-उन्मूलन के लिए प्रयास करते हैं।

गबन

मध्यवित्त परिवार की झूठी प्रतिष्ठा की लालसा व आभूषण-प्रेम, उसके नैतिक पतन का किस हद तक उत्तरदायी है; इसी वात को लेकर प्रेमचन्द ने गवन का कथानक गठित किया है। विवाह के अवसर पर झूठी प्रतिष्ठा के मोह में रमानाथ का पिता दयानाथ सामर्थ्य से कहीं अधिक व्यय कर वैठता है। फिर अन्य कोई उपाय न देखकर रमानाथ से जालपा के आभूषण माँगकर ऋण उतारने का अनुरोध करता है। रमानाथ नवविवाहिता जालपा से आभूषण माँगने में अत्यधिक संकोच करता है और अन्त में उसके आभूषण चुराकर पिता को देता है। दीनानाथ जो आजीवन सत्पथ पर चला और रिश्वत के एक रुपये तक को त्याज्य समझा, वही पुत्रवधू के आभूषण वेचकर ऋण चुकाता है।

झूँठी प्रतिष्ठा के मोह में रमानाथ रिश्वत लेता है, ऋण लेता है और सर-कार का रुपया गवन करके कलकत्ता भाग जाता है। उसके नैतिक पतन की यही सीमा नहीं है। निरपराध व्यक्तियों के विरुद्ध गवाही देने में भी उसे संकोच नहीं होता।

---

१. त्रिभुवनसिंह : हिन्दी उपन्यास और यथार्थवाद, पृ० १८७।

प्रेमचन्द ने अपने चिन्तन और जीवन-दर्शन के अनुरूप रमानाथ के नैतिक पतन का उद्धार जालपा के सच्चे, सरल और आदर्श जीवन से कराने की चेष्टा की है।

रंगभूमि

रंगभूमि उपन्यास में भारत में रहने वाले दो समाज, जिनके पारस्परिक रीति-रिवाज, संस्कार एवं धार्मिक आचार-विचार एक दूसरे से भिन्न हैं, चित्रित किये गये हैं। अन्धा सूरदास ग्राम्य जीवन का प्रतीक है और वह गांधी के विचारों का प्रतिनिधि है। पण्डा नायकराम, बजरंगी अहीर, भैरों पासी आदि न केवल देश-उन्नति में बाधक हैं, अपितु उसे पीछे की ओर खींच भी रहे हैं।

रंगभूमि में एक ओर एकाकी एवं नेत्रहीन सूरदास है, दूसरी ओर जान सेवक, कुँवर महेन्द्रसिंह और मिस्टर क्लार्क हैं जो धन, सत्ता और शासन-शक्ति के मद में चूर हैं। उक्त उपन्यास इन दो पक्षों के टक्कर की कथा है। निर्बल, निःस्सहाय सूरदास सत्य और अहिंसा के बल पर पाशविक शक्तियों को पराजित करता है। अन्त में उसकी हार होती है परन्तु इस हार में भी उसकी नैतिक विजय है तथा जान सेवक, महेन्द्रसिंह और मि० क्लार्क की जीत में भी उनकी नैतिक पराजय है।

कर्मभूमि

भारतीय नागरिकों को कर्म की प्रेरणा देने के लिए प्रेमचन्द ने कर्मभूमि उपन्यास की रचना की है। "इसमें दीन कृषकों एवम् श्रमिकों की मौन वाणी का स्वर है। इसमें शिक्षा-संस्थाओं की अर्थ-व्यवसायी नीति, म्युनिसिपल कर्मचारियों की स्वार्थपरता, सेठ-साहूकारों के धनार्जन के घृणित उपाय, मठाधीश-महन्त तथा जमींदारों की विलासिता एवम् क्रूरता तथा राज्य-कर्मचारियों के आत्मपतन तथा स्वेच्छाचार आदि की बड़ी ही यथार्थ और कलात्मक व्याख्या हुई है।"[1] प्रस्तुत उपन्यास में महिलाओं में राष्ट्रीय-जागरण का स्वर स्तुत्य तथा सराहनीय है। कर्मभूमि उपन्यास तो वस्तुतः सत्याग्रह आन्दोलन की कहानी है। प्रेमचन्द ने सत्याग्रह की सफलता सिद्ध करने के लिए उपन्यास के अन्त में किसानों और अछूतों की समस्याओं को सुलझा दिया है।

---

१. हिन्दी उपन्यास और यथार्थवाद, पृ० २०५।

कायाकल्प

प्रस्तुत उपन्यास में भी प्रेमचन्द ने अहिंसा और सत्याग्रह की विजय दिखाई है। आगरा के मुसलमान, चक्रधर के सत्याग्रह से अत्यधिक प्रभावित हो उठते हैं। उसके सत्याग्रह के फलस्वरूप मुसलमान गौ-हत्या बन्द करने का निश्चय कर लेते हैं तथा हिन्दू-मुस्लिम उपद्रव भी शान्त हो जाते हैं। उसके अहिंसा के व्रत में भी कम शक्ति नहीं। जेल के कैदियों का विद्रोह इसी व्रत के कारण समाप्त हो जाता है। राजा विशालसिंह के तिलकोत्सव के अवसर पर जनता क्रुद्ध हो उठती है। क्रुद्ध जनता को शान्ति प्रदान करने वाली भी चक्रधर की अहिंसा ही है।

प्रेमाश्रम

प्रेमाश्रम में किसानों की दीन दशा, ज़मींदारों के अत्याचार, पुलिस तथा न्यायाधीशों के अन्याय आदि का सफल चित्रण है। इस उपन्यास में ज़मींदारी प्रथा के कारण लखनपुर गाँव की बरबादी तथा ज़मींदारी उन्मूलन के कारण गाँव की खुशहाली की कहानी है। इसमें ज़मींदार एवम् किसान के संघर्ष का सवाक् चित्र है। कादिरमियाँ के नेतृत्व में किसानों का जागरण तथा भारतवासियों के राष्ट्रीय जागरण की सूचना है। प्रेमाश्रम में भारतीय स्वतन्त्रता-संग्राम की यथार्थ रूपरेखा प्रस्तुत की गयी है।

गोदान

"गोदान ग्रामीण जीवन के वास्तविक पक्ष का गद्यात्मक महाकाव्य है।"[१] प्रस्तुत उपन्यास में दो स्वतन्त्र कथायें हैं। एक कथा के पात्र हैं मेहता, खन्ना आदि जो शिक्षित तथा शोषक वर्ग के प्रतिनिधि हैं। दूसरी कथा का नायक है होरी जो शोषित वर्ग का प्रतिनिधित्व करता है।

गोदान में लेखक ने सामाजिक कुरीतियों तथा आदर्श जीवन का चित्रण किया है। इसका कथानक साहूकारों के शोषण को लेकर रचा गया है। होरी सामर्थ्य से अधिक परिश्रम करता है किन्तु फिर भी दोनों समय वह अपनी क्षुधा शान्त नहीं कर पाता। वह जो कुछ अर्जन करता है साहूकारों का ऋण चुकाने में समाप्त हो जाता है। किसान होते हुए भी वह आजीवन एक गाय पालने की उत्कट इच्छा पूरी न कर सका। इस इच्छा का अन्त सवा रुपये के गोदान में दिखाकर

१. हिन्दी उपन्यास और यथार्थवाद, पृ० २०५।

प्रेमचन्द ने कृषक वर्ग की आर्थिक विपन्नता की कहानी कही है।

"गोदान में आदर्श व्यक्तियों के जीवन में मानव-सुलभ दुर्बलताओं का चित्रण करते हुए लेखक ने उनकी सद्वृत्तियों को प्रस्फुटित कर मानव के प्रति अपनी अडिग आस्था का प्रमाण दिया है, जिसके आधार पर प्रेमचन्द की उपन्यास-कला के सामाजिक उद्देश्य का मूल स्वर मुखरित होता है। वह स्वर जीवन का स्वर है। अन्य स्वर उसके समक्ष समर्पित हैं।"[1]

गोदान का मेहता प्रेमचन्द की इस मान्यता को स्पष्ट करता हुआ कहता है। "प्रवृत्ति और निवृत्ति—दोनों के बीच में जो सेवा-मार्ग है, चाहे उसे कर्मयोग ही कहो, वही जीवन को सार्थक कर सकता है, वही जीवन को ऊँचा और पवित्र बना सकता है।"[2]

प्रेमचन्द के सभी उपन्यास (गोदान के अतिरिक्त) आदर्शोन्मुख यथार्थवाद की श्रेणी में रखे जा सकते हैं। प्रेमचन्द ने अपने साहित्य द्वारा समाज तथा मानवता को एक संदेश देना चाहा है। उनकी दृष्टि सुधारवादी रही है। डा० श्रीकृष्ण लाल के शब्दों में, "उन्होंने ही पहले-पहल अपने चरित्रों की शारीरिक और नैतिक विशेषताओं की ओर ध्यान दिया, उनकी व्यक्तिगत रुचि, आदर्श-भावना तथा उनकी कमज़ोरी का चित्र पाठकों के सामने उपस्थित किया।"[3]

प्रेमचन्द के उपन्यासों में नीति-वाक्यों तथा उपदेशों का बाहुल्य है। "प्रेमचन्द के आचरण-सम्बन्धी अनेक नीति-वाक्य अन्ततः जीवन के गहन अध्ययन एवं उनकी उपदेशात्मकता के संयोग का ही परिणाम हैं।"[4] प्रेमचन्द ने अपने उपन्यासों में समग्र जीवन का प्रतिविम्ब चित्रित कर दिया है। नये जीवन-मूल्यों की सृष्टि करके मानव के आध्यात्मिक जीवन को समृद्ध बनाने का उसका प्रयास निश्चय ही स्तुत्य है।

जयशंकर प्रसाद

प्रेमचन्द अपने उपन्यासों में नैतिक आदर्शों की प्रतिष्ठा के विषय में विशेष रूप से सचेष्ट रहा। वह नैतिक विषमताओं का उल्लेख करके उनमें सुधार करने का आकांक्षी था। उसने नैतिक आदर्शों के आलोक में समाज के उत्कर्ष के बड़े

---

१. हिन्दी उपन्यास : प्रेम और जीवन, पृ० १२७।

२. गोदान, पृ० ३०८-३०९।

३. डा० श्री कृष्णलाल : 'आधुनिक हिन्दी साहित्य का विकास'।

४. हिन्दी उपन्यास का विकास और नैतिकता, पृ० ८६।

चित्ताकर्षक चित्र खींचे। प्रसाद ने मरहम-उपचार न करके चीरफाड़ की नीति को अपनाया। उसने समाज में फैली अनैतिक वीभत्सता की पोल खोली। पाखण्ड, पापाचार एवं अनाचार का पर्दाफ़ाश करके समाज का ध्यान उनकी ओर आकर्षित किया। प्रसाद ने नैतिक आदर्शों की चर्चा को छोड़कर यथार्थ को चित्रित किया और उपन्यास-रचना की नई यथार्थवादी परम्परा की नींव डाली।

कंकाल

समाज की नैतिक विकृति का उद्घाटन करने के लिये प्रसाद ने कंकाल उपन्यास के कथानक का गठन किया है। प्रस्तुत उपन्यास में प्रसाद के व्यंग्य अत्यधिक तीखे हैं। धार्मिक पाखण्ड पर व्यंग्य-वाण चलाने के लिए उसने देवनिरंजन द्वारा किशोरी की पुत्र-कामना की पूर्ति की घटना को लिया है। इस व्यंग्य में घृत-आहुति देने के लिए उसने अन्य सटीक घटनाओं की उद्भावना की है। किशोरी द्वारा काशी में सत्संग, देवनिरंजन द्वारा यमुना के देवगृह-प्रवेश पर क्रोध, वृन्दावन-परिक्रमा तथा देवनिरंजन-किशोरी अवैध सम्वन्ध आदि घटनायें धार्मिक पवित्रता के ढोंग पर तीखे कटाक्ष हैं।

हिन्दू धर्म की पोल तो प्रसाद ने खोली ही है, ईसाई धर्म भी उसकी शल्य-चिकित्सा से बच नहीं पाया है। वाथम एक ओर ईसाई-धर्म का प्रचार करता है, पवित्रता के उपदेश देता है और दूसरी ओर घण्टी को प्राप्त करने के लिये कुचक्र-रचना में लगा रहता है।

इसी प्रकार कुलीनता का दम्भ करने वाले व्यक्तियों पर कटाक्ष करने के लिये प्रसाद ने किशोरी-देवनिरंजन के अतिरिक्त श्रीचन्द्र और चन्द्रा के अवैध-सम्वन्धों की घटनायें ली हैं। श्रीचन्द्र, किशोरी को यह वहाना वनाकर काशी भेज देता है कि उसके लिये अमृतसर की जलवायु अनुकूल नहीं है। काशी में किशोरी तथा देवनिरंजन के अवैध सम्वन्ध निर्विघ्न चलते रहते हैं। अमृतसर में वह स्वयं भी चन्दा नामक विधवा से अवैध सम्वन्ध वना लेता है। वह अपनी कुल-प्रतिष्ठा के विषय में विशेष रूप से सचेष्ट है, अतः चन्दा के विवाह-प्रस्ताव को ठुकराकर वह अनाचार-पोषण करके समाज में अपनी प्रतिष्ठा वनाये रखता है।

समाज की जर्जर नैतिक अवस्था तथा कुलाभिमान का चित्र प्रस्तुत करने के लिए प्रसाद ने मंगल और तारा की घटना का चित्रण किया है। मंगल वेश्या के हाथों से तारा का उद्धार करता है। तारा का पिता धर्म, कुल तथा प्रतिष्ठा की मर्यादा वनाये रखने के लिए उसे स्वीकार नहीं करता। मंगल, साहस का परिचय देता है तथा उससे विवाह करने को तैयार हो जाता है। नन्दो चाची तारा की

माता के चरित्र के विपय में मंगल के कान भरती है। फलतः वह भी तारा का परित्याग कर देता है।

तितली

तितली उपन्यास में प्रसाद ने पारिवारिक तथा सामाजिक विपमता का यथा-तथ्य चित्र खींचा है। इंद्रदेव इंगलैंड से लौटकर आता है। उसकी महत्त्वाकांक्षायें अत्यधिक प्रवल हैं। वह वहुत कुछ करना चाहता है। उसके मार्ग की वाधा उसकी वहन माधुरी है। पति श्यामलाल द्वारा तिरस्कृत माधुरी माँ का आश्रय ग्रहण करती है। माधुरी स्वार्थी तथा कुटिल है। वह कुचक्र रचना करके माँ की संम्पत्ति ले लेने का प्रयास करती है। अपनी माँ श्याम दुलारी को इन्द्रदेव तथा उसकी भावी पत्नी शैला से विमुख करने का भागीरथ प्रयत्न करती है। माधुरी के कुचक्रों से इन्द्रदेव अत्यधिक पीड़ित होता है और धामपुर छोड़कर शहर में वकालत करना प्रारम्भ करता है। सम्मिलित कुटुम्व टूट जाता है। पारिवारिक विपमता का फल लगभग सभी व्यक्तियों को भोगना पड़ता है।

पारिवारिक विपमता के साथ-साथ प्रसाद ने सामाजिक विपमता का चित्रण भी इस उपन्यास में किया है। ज़मींदार, कृपकों को नाना प्रकार के कष्ट देते हैं। गद्दीधारी महन्त जनसाधारण को सन्मार्ग पर न लेजाकर पथभ्रष्ट करते हैं, समाज में अनाचार फैलाते हैं तथा आध्यात्मिक उन्नति न करके पापाचार सिखाते हैं। रामजस शोषित कृषक है तथा राजकुमारी महन्त द्वारा सतायी गयी नारी।

प्रसाद का कंकाल उपन्यास दुखान्त है। कंकाल में लेखक ने विजय का समाज-शासन के प्रति विद्रोह दिखाया है क्योंकि वह समाज द्वारा सताये गये व्यक्ति का कारुणिक चित्र खींचना चाहता था। कंकाल में लेखक ने स्पष्ट किया है कि समाज हृदयहीन और ह्रासोन्मुख है, समाज की वीभत्स नैतिक कठोरता का चित्रण करने के लिए ही प्रसाद ने कंकाल का दुःखपूर्ण अन्त दिखाया है।

तितली में समाज का उज्ज्वल स्वरूप चित्रित है। इसमें लेखक ने मधुवन और तितली तथा इन्द्रदेव और शैला का मिलन दिखाया है। तितली और शैला ग्राम-सेवा करती है। इस उपन्यास में लेखक ने समाज में प्रस्फुटित होने वाले नवचेतना के स्वर को वाणी दी है। प्रसाद ने "नारी तितली के सुखपूर्ण अन्त में मानो नारी के एकनिष्ठ परिश्रम की सराहना की है। प्रसाद को नारी जाति के जागरण एवं ग्रामोत्थान के आन्दोलनों में समाजव्यापी अन्धकार का निराकरण करने वाली आशा किरणों के दर्शन होते हैं। अतः इसी आशावाद से प्रेरित होकर उन्होंने तितली का सुखपूर्ण अन्त किया है।"[1]

१. हिन्दी उपन्यास का विकास और नैतिकता, पृ० ९९।

३ : : वर्माजी के उपन्यास--नैतिकता के प्रेरक तत्व

वर्माजी के पूर्ववर्ती उपन्यासों का अवलोकन करने के पश्चात् इस निष्कर्ष पर सहज ही पहुँचा जा सकता है कि उन्होंने प्रचलित परिपाटी के ग्राह्य को तो ग्रहण किया ही है, अपनी कल्पना तथा ऐतिहासिकता का आधार लेकर साहित्य को बहुत कुछ नवीन भी दिया है।

आत्माभिव्यक्ति की सच्चाई

लेखक आदर्शवादी उपन्यासकार है। उसकी उपन्यास-रचना का उद्देश्य सत्यं शिवं सुन्दरं है। वह ऐतिहासिक उपन्यासकार अवश्य है परन्तु एक जागरूक कलाकार होने के कारण वह वर्तमान से मुँह मोड़कर केवल अतीत के वैभव में खोया रहना अनुचित समझता है। उसका विचार है कि आज और आने वाले कल के लिए भी तो उसमें कुछ हो। केवल ऐतिहासिक वर्णन या मनोरंजन-मात्र उसे अभीष्ट नहीं।[१]

व्यक्तित्व

लेखक के उपन्यासों में इसीलिए मनोरंजकता के साथ-साथ सात्विकता तथा उच्चता के दर्शन भी होते हैं। यदि लेखक के व्यक्तित्व का विश्लेपण किया जावे तो उसकी आत्माभिव्यक्ति की सच्चाई प्रकट हो जाती है। वह उपन्यासों में मानव-जीवन की व्याख्या करता है परन्तु उसके निजत्व, व्यक्तित्व, हृदय एवं बुद्धि की झलक उसके उपन्यासों में आद्यंत छाई है। वह भाव-पक्ष द्वारा उपन्यास में वर्णित दार्शनिकता की बोझिलता को दूर कर उसमें सरसता ला देता है।

स्वभाव

लेखक के उपन्यासों के लगभग सभी पुरुप एवम् नारी पात्र शारीरिक रूप से

---

१. अहिल्यावाई : परिचय, पृ० २।

बलिष्ठ एवम् शक्तिशाली हैं। सम्भवतया इसका कारण स्वयं लेखक की बलिष्ठ एवम् स्फूर्तिमयी देह है। वृद्धावस्था में भी उसका हृदय युवा है। वह मनमौजी है और उत्फुल्लता के कारण हर समय ओज और उमंग से भरा रहता है।[1] शारीरिक शक्ति को बनाये रखने के लिए वह नित्य व्यायाम करता है और सात-आठ सेर दूध पीकर कुश्ती लड़ने में प्रसन्नता का अनुभव करता है। इसीलिये अपने उपन्यासों में शारीरिक शक्ति और दृढ़ता पर वह विशेष बल देता है। स्त्रियों के लिए भी कुश्ती और मलखंब आदि को आवश्यक समझता है।[2] स्वस्थ शरीर में ही स्वस्थ मस्तिष्क का निवास होता है, इसीलिये वह शारीरिक स्वास्थ्य को इतना महत्त्व देता है।

शारीरिक शक्ति के अतिरिक्त लेखक का धैर्य और साहस भी प्रशंसनीय है। कठिन से कठिन परिस्थिति में भी न वह विचलित होता है न मानसिक संतुलन त्यागता है।[3] वह सरस्वती का आराधक तथा श्रम का पुजारी है, अतः सदैव कार्य-रत रहता है। अपने 'सोना' उपन्यास में उसने श्रम की महत्ता को प्रतिपादित किया है।

चरित्र

लेखक चारित्रिक शुचिता एवम् सबलता के लिए विशेष रूप से सचेष्ट है। वह स्वयं स्वीकार करता है, "चरित्र की रक्षा करने की सदा से चेष्टा करता हूँ। ब्रह्मचर्य-पालन की सदा चेष्टा करता हूँ"[4] "उसने प्रेम किया है"[5] परन्तु वह प्रेम को आत्मिक सम्बन्ध मानता है और उसकी शुचिता को अक्षुण्ण बनाये रखने के लिए उसे वासना के सूक्ष्मातिसूक्ष्म स्पर्श से बचाता है क्योंकि वह ब्रह्मचर्य को चारित्रिक दृढ़ता के लिए आवश्यक मानता है। उसके लगभग सभी उपन्यासों में प्रेम का यही पावन तथा उदात्त रूप दृष्टिगत होता है।

वह प्रदर्शन का विरोधी है और मौन साधक है। न उसे प्रशंसा की चाह है न विज्ञापन का मोह। भगवानदास का लेखक के विषय में यह मत युक्तियुक्त है कि वर्माजी को लोग अपने-अपने दृष्टिकोण से भिन्न-भिन्न रूपों से महान् मानते हैं,

---

१. डा० शशिभूषण सिंहल : 'उपन्यासकार वृन्दावनलाल वर्मा', पृ० १२।
२. झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई, पृ० ६५-६७।
३. सियारामशरण प्रसाद : 'वृन्दावनलाल वर्मा—साहित्य और समीक्षा', पृ० ३४।
४. उनकी डायरी से, २०-१०-१५।
५. वर्माजी का पत्र, मेरे नाम, २८-४-१९६७।

परन्तु और कुछ महान् होने के पहले वह महान मानव ही है।

अभिरुचि

विभिन्नता प्रेमी होने के कारण वर्माजी की अभिरुचियाँ भी भिन्न-भिन्न हैं। वे कहते हैं "मेरा जीवन, जैसाकि शायद प्रत्येक मानव का होता है, विभिन्न-ताओं से भरा हुआ है। शिकार का शौकीन हूँ। जंगल-पहाड़ खूब घूमे हैं। भिन्न-भिन्न प्रकार के जनों से मिला हूँ। छः बार मौत के मुँह से बचा हूँ।"[१] वर्माजी का विचार है कि, "शिकार कोई खेले या न खेले, परन्तु मैं अनुरोध करूँगा कि जंगलों और पहाड़ों में घूमे ज़रूर। घूमे ही नहीं, भटके और दो चार बार अपने घुटने भी फोड़े। जंगल-पहाड़ों के लाँघने के अभ्यास को यदि हम जीवन की कठिनाइयों से लड़ने और उनसे पार पाने की क्रिया में परिणत कर दें तो किसी को क्या शिकायत हो सकती है?[२]

वर्माजी शिकार के शौकीन हैं इसीलिये उनके उपन्यासों में शिकार के बड़े यथार्थ चित्रण हैं। उनके सभी पात्र जीवन की कठिनाइयों से भयभीत नहीं होते अपितु साहसपूर्वक उनका सामना करते हैं।

भ्रमण

लेखक को भ्रमण में रुचि है। बुन्देलखण्ड का चप्पा-चप्पा उसने छान मारा है। लेखक जिस स्थान विशेष से कथावस्तु ग्रहण करता है उस क्षेत्र का भ्रमण करना आवश्यक समझता है। वह वहाँ निवास करके प्रकृति के कण-कण से परि-चित होता है। उनके उपन्यासों के प्रकृति-वर्णनों में इसीलिये हृदयग्राहिता के अतिरिक्त प्रामाणिकता भी है।

कला : संगीत, चित्रकला, वस्तुकला

लेखक को संगीत, चित्रकला और वस्तुकला से भी गहन प्रेम है। वह सितार बजाते समय खाने-पीने की सुधि भूल जाता है।[३] 'मृगनयनी', 'माधवजी सिंधिया' और 'अचल मेरा कोई' उपन्यासों में सूक्ष्मातिसूक्ष्म संगीत-ज्ञान और कौशल का प्रदर्शन इसीलिये सम्भव है कि लेखक स्वयं कुशल संगीतज्ञ है। चित्रकला की बारी-

---

१. वर्माजी का पत्र, मेरे नाम, २८-४-१९६७।

२. दबे पाँव, वक्तव्य।

३. सियारामशरण प्रसाद : 'वृदावनलाल वर्मा : साहित्य और समीक्षा', पृ० ३४।

कियों से भी वह पूर्णतया परिचित है। रामचेरी, कला और मृगनयनी की चित्र-कला का वर्णन पढ़कर इसे सहज ही समझा जा सकता है। वास्तुकला का लेखक ने गहन अध्ययन किया है। मानसिंह द्वारा निर्मित भवनों से उसके ज्ञान का परिचय प्राप्त होता है।

साहित्य

साहित्य की आराधना तो लेखक की साधना ही है। वह साहित्य-सृजन करके माँ सरस्वती के चरणों में श्रद्धा-सुमन चढ़ाता है।

प्रेरणा एवं संस्कार

लेखक को साहित्य-सृजन की प्रेरणा अपने परिवार से मिली। चाचा श्री बिहारीलाल की साहित्य-साधना से प्रभावित होकर उसने विद्यार्थी-जीवन से ही साहित्य-रचना प्रारम्भ कर दी। उसके प्रपितामह आनन्दराय भी कविता लिखा करते थे। अतः साहित्यानुराग इसके रक्त में घुला-मिला है।

"वर्माजी में राष्ट्रीयता और स्वदेश-प्रेम सांस्कारिक तत्त्व हैं।"[१] इनके पूर्व-पुरुष, छत्रसाल के सैनिक थे। प्रपितामह आनन्दराय मराठों के दीवान एवम् फौजदार थे। १८५७ में इन्होंने झाँसी की रानी के स्वातन्त्र्य-समर में अंग्रेज़ों के विरुद्ध युद्ध किया था। पितामह कन्हैयालाल विद्रोह-दमन के पश्चात अंग्रेज़ों के बन्दी रहे।[२] इस प्रकार स्वदेश पर प्राण न्योछावर करने के संस्कार वर्माजी को पैतृक सम्पत्ति के रूप में प्राप्त हुए।

परदादी ने लक्ष्मीबाई सम्बन्धी कहानियाँ सुनाकर लेखक के बाल हृदय में देश प्रेम की सुप्त चिनगारी को प्रज्वलित कर दिया। स्कूल में अंग्रेज़ों तथा विदेशियों द्वारा रचित पुस्तकों में भारत के प्रति अपमान के भाव देखकर लेखक ने निश्चय किया, "पढ़ूँगा और खोज करूँगा।"

वाल्टर स्काट से भी लेखक को अनेक प्रेरणायें मिलीं। लेखक परम्पराओं तथा किंवदन्तियों द्वारा सत्य की खोज करना उचित समझता है। इतिहास सम्बन्धित भौगोलिक स्थानों का भ्रमण एवम् निरीक्षण करना वह आवश्यक मानता है।[३]

---

१. सियारामशरण प्रसाद: 'वृन्दावनलाल वर्मा : साहित्य और समीक्षा', पृ० ३१।

२. वृन्दावनलाल वर्मा : अपनी कहानी (अपूर्ण, अप्रकाशित) उपन्यासकार वृन्दावनलाल वर्मा से उत्कथित।

३. आजकल (जुलाई, ५७), पृ० १८।

अनेक बार प्रकृति भी लेखक की प्रेरणा बन जाती है।[१]

लेखक के लगभग सभी ऐतिहासिक उपन्यास देश-प्रेम की अलौकिक ज्योति से प्रकाशमान हैं। पुरुष एवम् नारी पात्रों में देश-हित के लिए मर मिटनेकी अदम्य लालसा उन्हें उच्च चारित्रिक महत्त्व प्रदान करती है।

आंचलिक मोह

लेखक के हृदय में देश-प्रेम कूट-कूटकर भरा है, परन्तु अपनी जन्म-भूमि के लिए भी उसके हृदय में कुछ कम अनुराग नहीं। वह बुन्देलखण्ड की भव्यता और सौन्दर्यपरता को संसार के सामने उपस्थित करना चाहता है।

बुन्देलखण्ड का इतिहास शौर्य, पराक्रम एवम् साहस का इतिहास है। लेखक का अपनी जन्मभूमि के कण-कण से परिचय है, वहाँ की किंवदन्तियों एवम् परम्पराओं से प्राणवायु ग्रहण करके उसने ऐतिहासिक उपन्यासों में सत्य की रक्षा की है क्योंकि उसका विचार है कि "परदेसियों के तोड़-मरोड़कर लिखे हुए इतिहास, पटके खाए हुए उस चमकते हुए टीन के कनस्तर के समान हैं जिसमें सुन्दर से सुन्दर चेहरा अपने को कुरूप और विकृत पाता है परन्तु परम्परा अतिशयता की गोद में खेलती हुई भी सत्य की ओर संकेत करती है, इसलिये मुझको परम्परा इतिहास से भी अधिक आकर्षक जान पड़ती है।[२] लेखक के ऐतिहासिक एवम् सामाजिक उपन्यासों में बुन्देलखण्ड का वैभव दृष्टव्य है।

जीवन-दर्शन

लेखक एक जागरूक कलाकार है। वह वर्तमान से मुँह मोंड़कर केवल अतीत के वैभव में खोया रहना अनुचित समझता है। ऐतिहासिक उपन्यासों में भी लेखक वर्तमान समस्याओं तथा अपने दृष्टिकोणों को स्थान देता है क्योंकि उसका विश्वास है कि भारत का इतिहास लिखने वाले अंग्रेज लेखकों ने शोध के परिश्रम और विद्वत्ता के प्रवाह के साथ हमको न्याय नहीं दिया। हम उनकी श्रमशीलता और गहरी विद्वत्ता को नमस्कार कर सकते हैं, परन्तु उनके दृष्टिकोण पर हमारी भौंहें तन जाती हैं। इतिहास के आधार पर उपन्यासलिखने वाला भी अपना दृष्टिकोण रखता है, परन्तु वह केवल इतिहास लिखने वाले की अपेक्षा अधिक स्वतन्त्र है।[३]

---

१. गढ़ कुण्डार, विराटा की पद्मिनी।

२. कचनार : परिचय, पृ० ६।

३. वृन्दावनलाल वर्मा : 'ऐतिहासिक उपन्यास और मेरा दृष्टिकोण' नये पत्ते : जनवरी-फरवरी, १९५३, पृ० ४४।

इतिहास के प्रति दृष्टिकोण

"अतीत के चित्रण की ओर वर्माजी शुद्ध ऐतिहासिक दृष्टि से ही प्रवृत्त हुए हों, यह बात नहीं। ऐतिहासिक उपन्यासों की रचना में प्रेमचन्द की तरह वह भी एक आदर्श लेकर चले हैं। ऐतिहासिक पृष्ठभूमि पर खड़े होकर वर्तमान को समझने और सुधारने की चेष्टा भी उनके उपन्यासों में मिलती है, स्पष्ट उपदेशकता के रूप में चाहे वह व्यक्त न हुई हो[1] लेखक ऐतिहासिक उपन्यास लिखते समय भी वर्तमान को कभी विस्मृत नहीं करता। वह ऐतिहासिक उपन्यासकार का यह कर्त्तव्य मानता है कि उसके ऐतिहासिक उपन्यास से पाठक को और लेखक से समाज को कोई कल्याणकारी प्रेरणा मिले। यदि उपन्यासकार जनमत को उच्चता एवं महानता की ओर अग्रसर कर सके तो उसका प्रयास सफल तथा उसका परिश्रम सार्थक हो जाता है। लेखक का विचार है कि यदि लेखक ने व्यक्ति के भीतर भरे पुरुषार्थ और सत्-सिद्धान्त पर बलिदान हो जाने की शक्ति को जगा दिया तो इतिहास के प्रकाशमान तथ्यों की जैसी व्याख्या होनी चाहिए वैसी व्याख्या हो गयी। भूतकाल में देवताओं की लीलाएँ भी हुई हैं और राक्षसों की भी और आज भी हो रही हैं। उपन्यास लेखक दोनों की व्याख्या रोचक ढंग से कर सकता है और करे, परन्तु पाठक अन्त में देवताओं के क्रिया-कलापों पर मुग्ध होकर न रह जाय और राक्षसों की लीला का तिरस्कार उसका मन कर दे तो उपन्यास लेखक ने इतिहास की सच्ची व्याख्या की।[2] लेखक ने अपने इस दृष्टिकोण की रक्षा लगभग सभी ऐतिहासिक उपन्यासों में की है।

लेखक अतीत-गाथा-गान द्वारा पाठकों को पलायनवादी नहीं बनाता प्रत्युत उन्हें उत्तेजित करके भविष्य के लिए प्रबल बनाता है। अपने ऐतिहासिक उपन्यासों में वह वर्तमान समस्याओं का समावेश सोद्देश्य करता है[3] क्योंकि उसका विचार है कि, "वर्तमान समस्याओं का हल अचेत मन पर हमला करने से ज्यादा आसान होगा और सचेत मन पर हमला करने से कम। जब मैं शताब्दियों पहले के वातावरण में पाठकों को उठा ले भागता हूँ तब वे वर्तमान का कोई भी आग्रह या

---

१. रणवीर रांग्रा : 'हिन्दी उपन्यास में चरित्र-चित्रण का विकास', पृ० ३०५।
२. वृन्दावनलाल वर्मा : ऐतिहासिक उपन्यास और मेरा दृष्टिकोण, 'नये पत्ते' जनवरी-फरवरी, १९५३, पृ० ४८।
३. डा० शशिभूषण सिंहल : 'उपन्यासकार वृन्दावनलाल वर्मा', परिशिष्ट, पृ० २८६।

दुराग्रह साथ नहीं ले जा पाते। फिर वहीं उनके अचेत मन में प्रवेश करके जो कुछ करना चाहता हूँ कर डालता हूँ। वे जब उपन्यास को समाप्त करने के बाद वर्तमान में लौटते हैं, तब अपने-आपको कुछ अधिक सशक्त, स्फूर्तिमय और बढ़ा हुआ पाते हैं। उनको मैं पुराने वातावरण में ले जाकर पुरातन की ग्राह्य और अग्राह्य दोनों मूर्तियाँ दिखाता हूँ, जिससे वे वर्तमान में लौटकर पुरातन के सड़ियलपने को वहीं छोड़ आवें। सशक्त को अपने साथ रखकर वर्तमान की समस्या से भिड़ने में अपने-आपको समर्थ पावें।"[१]

लेखक अपने इस दृष्टिकोण की रक्षा अपने सभी ऐतिहासिक उपन्यासों में करता है इसलिये कल्याणकारी एवम् मंगलमयी भावनाओं के कारण उसके उपन्यास एक अनोखी गरिमा से मण्डित हैं।

राजनीति के प्रति

लेखक का हृदय राष्ट्र-प्रेम से परिपूर्ण है। उसका दृष्टिकोण मानवतावादी है। वह सभ्यता, संस्कृति एवम् आत्मिक विकास के लिए व्यक्ति की स्वतन्त्रता को आवश्यक समझता है परन्तु वह किसी भी वाद का समर्थक नहीं, क्योंकि बाह्य आडम्बरों को वह घृणा की दृष्टि से देखता है। वह नारों, प्रतीकों, रंगों और झण्डों की पूजा को व्यर्थ मानता है, क्योंकि साधनों में बद्ध हो जाने से साध्य दूर चला जाता है।[२]

लेखक यथासम्भव वादों के वाद-विवाद से दूर रहता है। उसका विचार है कि अपने भीतर बसाये हुए किसी भी सिद्धान्त या वाद के हुक्म पर चलते रहने का अभ्यास ही विवाद और बखेड़े उत्पन्न करता है। वह अमर बेल की तरह छाया रहता है और सारी शक्ति को सोखता रहकर वादी को निर्जीव बना देता है।[३] इसीलिए लेखक वादों के 'हुक्म' पर चलना उचित नहीं समझता, अतः अपने विवेक से काम लेता है।

आरम्भ में लेखक कांग्रेस-भक्त था परन्तु मित्र राजनारायण के साथ कांग्रेस नेताओं के हृदय-हीन व्यवहार को देखकर वह कांग्रेस विरोधी हो गया। वह स्वयं लिखता है, "हिंसा की लम्बी चीख पुकार करने वाले भी कितना घोर कर्म करते हैं, यह मन में बैठता गया। साधु के प्रति साधु व्यवहार बिलकुल ठीक है—जो

---

१. सरगम १—उपन्यासकार वृन्दावनलाल वर्मा।

२. अमरबेल, पृ० ३७८।

३. वही, पृ० ४०३।

इसका पालन न करे वह नीच है, परन्तु हर एक के प्रति पूरी अहिंसा का सिद्धान्त मुझे नहीं जँचता। कभी-कभी हिंसा जरूरी ही नहीं, बिलकुल उचित भी है।"[1]

लेखक किसी वाद-विशेष का समर्थक नहीं। उसकी सार-ग्राहिणी प्रवृत्ति सब वादों के गुणों को स्वीकार करती है। वह किसी राजनैतिक दल के पक्ष में अथवा विपक्ष में कुछ नहीं कहता। वह तो मानव-कल्याण का इच्छुक है अतः प्रजातन्त्र का व्यक्ति स्वातन्त्र्य, समाजवाद की समता तथा साम्यवाद के प्रयत्नों की गम्भीरता को उचित एवम् युक्ति-युक्त समझता है। लेखक अपने उपन्यासों में राजनीति की अच्छाइयों को ही स्थान देता है। वह राजनीति को अपने उपन्यासों में छल, प्रपंच तथा कूटनीति से दूर रखता है। राजनीति का योग उसे मानव के हित, उत्कर्ष एवम् विकास के लिए ही स्वीकार्य है।

धर्म के प्रति

लेखक मानव-कल्याण के लिए धर्म की उपादेयता में भी विश्वास करता है। लेखक का परिवार सनातन-धर्मी है परन्तु वह स्वयम् आर्य समाज के बड़े उपदेशक के प्रभाव में आकर कट्टर आर्यसमाजी बन गया। वह विश्व की संचालक शक्ति के अस्तित्व को स्वीकार करता है परन्तु धर्माडम्बरों में उसे तनिक भी आस्था नहीं।[2]

लेखक ने अपने लगभग सभी उपन्यासों में धर्म में फैले अन्धविश्वासों, कुसंस्कारों तथा कर्मकाण्डों की निरर्थकता तथा निस्सारता की पोल खोली है। वह रूढ़िवादिता का विरोधी है और धार्मिक अनुष्ठानों पर उसे विश्वास नहीं। वह एक दूसरे से घृणा करने से और केवल माला जपते रहने से स्वर्ग-प्राप्ति असम्भव मानता है।[3] पारस्परिक सौहार्द, सदिच्छा, तथा प्रेम से ही भगवान को वशीभूत किया जा सकता है। वर्णाश्रम धर्म सम्बन्धी संकीर्णता को लेखक अनुचित, अग्राह्य, एवम् अनुपयोगी समझता है।[4]

लेखक श्रम का पुजारी है। अतः कृष्ण के कर्मयोग को जीवन के लिए उपयुक्त तथा कल्याणकारी समझता है। सत्कार्य करते हुए तथा भगवान का ध्यान

---

१. वर्माजी का पत्र शशिभूषण जी के नाम, ता० ९-७-१९५७।
२. डा० शशिभूषण सिंहल : 'उपन्यासकार वृन्दावनलाल वर्मा', पृ० १।
३. मृगनयनी, पृ० ४४-४५ ।
४. वहीं, पृ० ३०९।

करते हुए मृत्यु को प्राप्त करना ही वह धर्म का वास्तविक रूप समझता है।[१]

लेखक बाह्याडम्बरों को निरर्थक समझता है। उसने धर्म के मानवतावादी दृष्टिकोण को ही उचित तथा मंगलमय माना है। कर्तव्य-पालन को भी वह धर्म के अन्तर्गत ही समझता है।[२] प्रकृति के कण-कण में वह परमात्मा की सत्ता को खोजता है।[३] वह सुन्दर को ही शिव मानता है और मनुष्य के उच्च विश्वासों, सत्कार्यों तथा सद्गुणों में भी ईश्वर की परिकल्पना करता है। वह संकीर्णता से मुक्त ऐसे धर्म की कल्पना करता है जो मानव को स्फूर्ति, प्रेरणा, शुचिता एवम् पावनता प्रदान कर, जीवन-पथ पर दृढ़ता, आत्म-विश्वास एवम् कर्मठता से अग्रसर होने की शक्ति दे। वह धर्म के मानवतावादी दृष्टिकोण में विश्वास रखता है।

जीवन के प्रति

वर्माजी का जीवन के प्रति आशावादिता का दृष्टिकोण है। उनकी दृष्टि निर्बल को सबल, अव्यवस्थित को सुव्यवस्थित और कुरूप को सुन्दर बनाने पर रहती है। उनमें जन-कल्याण की भावना बड़ी सजग है। इस प्रकार उपन्यासों में उनका लक्ष्य सत्यम्, शिवम्, सुंदरम् की साधना रहता है। जीवन के यथार्थ में आदर्श का गहरा पुट देना उन्हें रुचिकर है। इसी को उनका आदर्शोन्मुख यथार्थवाद कहा जा सकता है।[४]

जीवन के प्रति लेखक का दृष्टिकोण अत्यधिक स्वस्थ, सबल तथा सशक्त है। वैभव, विलास, आलस्य एवम् अकर्मण्यता को वह जीवन के लिए त्याज्य समझता है। वह साहस-विहीन और विक्रम-शून्य जीवन को मृत्यु का पर्याय मानता है।[५] कठिनाइयों एवम् बाधाओं का साहसपूर्वक सफलता से सामना करना ही जीवन की सफलता है।[६] वह शानशौकत, दिखावट एवम् बकझक को व्यर्थ समझता है।[७] वह जीवन को शक्ति, स्फूर्ति तथा साहस से भरपूर देखना चाहता है। जीवन की कठोरता एवम् संघर्ष का सामना करने के लिए वह सशक्त शरीर एवम् दृढ़ आत्म

---

१. झाँसी की रानी, पृ० १६३, १८१, ४१६।
२. विराटा की पद्मिनी, पृ० २४१।
३. वही, पृ० २४३।
४. शशिभूषण सिंहल : उपन्यासकार वृन्दावनलाल वर्मा, पृ० २८०।
५. अचल मेरा कोई, पृ० १२५।
६. महारानी दुर्गावती, पृ० १३।
७. अहिल्याबाई, पृ० १३६-३७।

बल का समर्थक है।[1]

लेखक श्रम के महत्त्व को प्रतिपादित करता है। श्रमविहीन जीवन ही आलस्य एवम् अकर्मण्यता का जीवन है, जिससे जीवन में एकरसता आ जाती है और वैविध्य समाप्त हो जाता है तथा स्वास्थ्य विदा ले जाता है। वह ईमानदारी से किये गये प्रत्येक श्रम को उचित समझता है। शारीरिक श्रम के साथ-साथ मानसिक विकास के लिए वह बौद्धिक श्रम की उपादेयता में भी विश्वास करता है।[2]

लेखक कर्त्तव्य-पालन को जीवन का उद्देश्य मानता है। उसकी धारणा है कि जब जो कर्त्तव्य सामने आये उसका दृढ़ता के साथ पालन करने से हृदय को आनन्द एवम् सन्तोष प्राप्त होता है, और कठिनाइयों एवम् विपत्तियों का साहस के साथ सामना करने की शक्ति मिलती है।[3] लेखक भावना एवम् संकल्प के समान समन्वय को जीवन की सफलता के लिए आवश्यक समझता है।[4]

लेखक कर्त्तव्य-पालन के अतिरिक्त जीवन की सफलता के लिए आत्मसम्मान को भी परमावश्यक मानता है। यदि जीवन में गौरव तथा सम्मान प्राप्त न हो तो ऐसे आत्मसम्मान-विहीन जीवन को वह पशु-तुल्य जीवन समझता है।

लेखक समाज की सुदृढ़ता, सुव्यवस्था, एवम् स्वास्थ्य के लिए तथा आत्मसम्मान की रक्षा के लिए आचरण को नीति-सम्मत बनाये रखने में विश्वास करता है। उसके उपन्यासों के लगभग सभी पात्र आत्मसम्मान-रक्षा के लिए पूर्ण रूप से सचेष्ट हैं तथा उनका नैतिक धरातल अत्यन्त उच्च है।

उपर्युक्त विवेचन से लेखक के महान् व्यक्तित्व का परिचय प्राप्त हो जाता है। उसके सभी उपन्यासों में उसके व्यक्तित्व की अमिट छाप द्रष्टव्य है। उसकी आत्माभिव्यक्ति की सच्चाई, आदर्शों की उच्चाशयता तथा नैतिक मूल्यों की महानता उसके उपन्यासों को अनोखी गरिमा से मण्डित कर देती है, जिन्हें पढ़कर हृदय में सात्त्विक विचार प्रवाहित हो उठते हैं। यही मानो लेखक के श्रम की सार्थकता है।

---

१. झाँसी की रानी, पृ० १०२।

२. सोना, पृ० १९१, २४७।

३. (अ) महारानी दुर्गावती, पृ० २८।
   (ब) अहिल्याबाई, पृ० १६७।

४. मृगनयनी, पृ० ४८७।

४ :: वर्माजी के उपन्यास और सामाजिक नीति

वर्माजी के व्यक्तित्व और जीवन-दर्शन का स्पष्ट प्रभाव उनके उपन्यासों पर पड़ा है। वे व्यक्ति को अँधेरे से उजाले की ओर ले जाने के लिए सतत् प्रयत्नशील हैं। उनके हृदय की यह एकान्त इच्छा है कि समाज सत्-पथ पर बना रहे। उसकी उन्नति हो, विकास हो और समाज के प्रत्येक व्यक्ति का नैतिक व्यवहार ऐसा हो जिस पर देश गर्व कर सके। वर्माजी ने नीति के दोनों ही पक्षों, सामाजिक नीति और राजनीति को अपने उपन्यासों में अपेक्षित स्थान दिया है।

सामाजिक नैतिकता

सामाजिक नैतिकता का लक्ष्य समाज में व्यवस्था बनाये रखना है। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए सामाजिक नैतिकता कुछ ऐसे नियमों, बन्धनों और कर्त्तव्यों की योजना करती है कि जिससे समाज में एकता बनी रहे।

भारतीय समाज में व्यक्ति के साधारण धर्म और कर्त्तव्यों की व्यवस्था की गई है जिन्हें मानना प्रत्येक व्यक्ति का पुनीत कर्त्तव्य समझा जाता है। इन साधारण धर्मों में धैर्य, क्षमा, चौर्या भाव, शौच, इन्द्रियनिग्रह, सत्य, अक्रोध आदि दस धर्म सम्मिलित किये गये हैं। इतना ही नहीं इन साधारण धर्मों के अतिरिक्त अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य—ये चार यम; और शौच, सन्तोष, तप, स्वाध्याय तथा ईश्वर-परिनिधान ये पाँच नियम भी हैं। इस प्रकार वर्णाश्रम धर्म, साधारण धर्म, यम और नियम—सब मिलकर भारतीय समाज की नैतिक व्यवस्था का रूप स्थिर करते हैं। सामाजिक नैतिकता इस व्यवस्था को अक्षुण्ण बनाये रखने के लिए प्रत्येक व्यक्ति को अपना-अपना धर्म-पालन करने का आदेश देती है।[1]

वर्माजी प्राचीन भारतीय संस्कृति के पुजारी हैं। वे समाज की सुदृढ़ता, सुव्यवस्था और स्वास्थ्य के लिए नैतिक मर्यादाओं का पालन करना परमावश्यक समझते हैं। वे ग्राह्य का ग्रहण तथा अग्राह्य का त्याग करना एक जागरूक लेखक के

---

१. डा० सुखदेव शुक्ल : 'हिन्दी उपन्यास का विकास और नैतिकता', पृ० ७।

लिए आवश्यक समझते हैं।

वर्माजी परम्परा से चली आ रही वर्णाश्रम व्यवस्था को अब समाज के लिए उपयोगी नहीं समझते। उसमें थोड़ा सुधार एवम् परिष्कार करना वह सामाजिक सुदृढ़ता के लिए आवश्यक समझते हैं। उनका विचार है कि समाज जाति-पाँति के कठोर बन्धन में आबद्ध हो गया है, अतः सरलतापूर्वक साँस लेना भी उसके लिए दुर्लभ है। लेखक का विचार है "अपने देश में एक जाति दूसरी जाति से बिलकुल अलग-सी पड़ गयी है। जातियों के उपजाति भेद समाप्त होने चाहिये। वर्णव्यवस्था ने देश को लाभ ही बहुत पहुँचाया है। बड़ी पुरानी है। इसके नष्ट होने की बात नहीं कहता, परन्तु इसके उपभेद मिटा देने चाहिये। पंजाब के ब्राह्मण, क्षत्रिय इत्यादि गुजरात, बंगाल आदि के ब्राह्मण क्षत्रिय में विवाह सम्बन्ध करें। यहाँ वाले वहाँ करें। राजस्थान के राजपूत अपने देश के अन्य स्थानों के किसी भी क्षत्रिय वंश में सम्बन्ध स्थापित करें और वहाँ के राजस्थान में।...ऊँच-नीच का विचार बिलकुल छोड़ दें।"[1]

लेखक वैयक्तिक विकास एवम् सामाजिक सुदृढ़ता के लिए वर्णाश्रम-धर्म की कठोरता को अनुचित समझता है इसलिये उसके लगभग सभी उपन्यासों में प्रेमी-युगल इस कठोरता को कुछ कम करने के लिए प्रयत्नशील हैं।

लेखक की वर्णाश्रम धर्म में अधिक आस्था नहीं परन्तु वह समाज के प्रत्येक व्यक्ति के लिए कर्त्तव्य-पालन तथा धर्माचरण आवश्यक समझता है। उसके ऐतिहासिक उपन्यासों के आदर्श पात्र स्वयम् तो धर्म-पथ पर आरूढ़ रहते ही हैं, साधारण जनता के धार्मिक भाव को प्रबुद्ध करने के लिए भी सतत् प्रयत्न करते रहते हैं। पथ-भ्रष्ट, दुखी, पीड़ित, तथा भ्रमित जनता को धर्म के पथ पर चलाना वे अपना पुनीत कर्त्तव्य समझते हैं। मन्दिर-निर्मित कर तथा कथा-वाचकों की नियुक्ति करके एक ओर तो वे जनता के हृदय में सद्भाव जाग्रत करते हैं, दूसरी ओर अन्न-सत्र खोलकर, धर्मशालायें, तालाब आदि बनवाकर वह प्रजा का कष्ट निवारण करते हैं। जन-हित कार्य[2] भी वे धर्म का कार्य समझते हैं। वे स्वयं धर्म-पथ पर आरूढ़ रहकर कृष्ण के कर्मयोग को जीवन में प्रतिफलित होते देखना चाहते हैं।[3]

सामाजिक उन्नति के लिए वर्माजी धर्म का यह सरल, आडम्बर-विहीन एवं लोकोपकारी रूप समाज के सम्मुख रखते हैं। "मनोवृत्ति को शुद्ध रखना चाहिए,

---

१. महारानी दुर्गावती, पृ० २५-२६।
२. वही, पृ० १९२-२४२।
३. झाँसी की रानी, पृ० ४७४।

आत्मा के रूप में परमात्मा का अंश मनोवल की सहायता से किसी न किसी जन्म में मनुष्य को मुक्ति दे देता है, वासनाओं से अलग रहकर जो कर्म किया जाता है वहाँ सुकर्म है, वर्तमान जन्म की तपस्या से पूर्व-जन्म का असफल मनोरथ सिद्ध हो जायेगा। क्रोध, मोह, वासना विकार हैं, आत्म-दर्शन अपने को ईश्वर के हाथों सौंप देने पर शून्य-ध्यान द्वारा हो जाता है।"[१] यह मानो भारतीय सामाजिक नैतिक आदर्शों का सार है। वर्माजी के उपन्यासों में अहिल्यावाई, लक्ष्मीवाई, अवन्तीवाई, दुर्गावती, कचनार आदि कतिपय आदर्श नारियाँ स्वयं भी इस पथ का अनुगमन करती हैं तथा अन्य व्यक्तियों को इस पथ पर चलने की प्रेरणा एवं प्रोत्साहन देती हैं।

वैयक्तिक नैतिकता

सामाजिक नैतिकता समाज के प्रत्येक व्यक्ति पर आरोपित है अतः वह वाह्य नैतिकता है। यदि किसी कारणवश समाज छिन्न-भिन्न हो जाए तो समाज में उच्छृंखलता तथा अनैतिकता आ जाना अनिवार्य है। समाज-व्यवस्था को सुदृढ़ एवं सुस्थिर बनाने के लिए समाज के प्रत्येक व्यक्ति में आन्तरिक नैतिकता होनी चाहिए। "वैयक्तिक नैतिकता के अन्तर्गत व्यक्ति में भले-बुरे अथवा उचित-अनुचित का ज्ञान, उसके मत और विश्वास, उसके नैतिक आदर्श और मूल्य आ जाते हैं। इस वैयक्तिक नैतिकता की सहायता से वह अपने आचरण को समयानुकूल बनाने में समर्थ हो जाता है। यह वैयक्तिक नैतिकता, अपने व्यापक अर्थ में व्यक्ति का अपना जीवन-दर्शन है, जिसके सहारे वह जीवन-यापन करता है। वैयक्तिक नैतिकता के स्वरूप निर्धारण पर सांस्कृतिक परम्परा और रहन-सहन का बहुत प्रभाव पड़ता है।"[२]

इसमें सन्देह नहीं कि व्यक्ति पर सामाजिक नैतिकता का वहुत प्रभाव पड़ता है परन्तु जव व्यक्ति सामाजिक नीति का यथातथ्य पालन न करके स्वयं अपना निर्णायक वन जाता है तव उसमें स्वतन्त्र व्यक्तित्व के विकास की झलक दिखाई देने लगती है। वह स्वयं अपने आचरण एवं भले-बुरे का निर्णय करके अपने दृष्टि-कोण का निर्माण करता है। वैसे भी उसे समाज के विविध नियमों एवं कर्त्तव्यों में से अपने लिए आचार-पद्धति चुननी पड़ती है। वह परिस्थितियों और वातावरण के अनुसार उनमें यथेष्ट परिवर्तन भी कर लेता है। वह एक ऐसी आचार-

१. कचनार, पृ० २८६।
२. डा० सुखदेव शुक्ल : 'हिन्दी उपन्यास का विकास और नैतिकता', पृ० ९।

पद्धति को जन्म देता है जिस पर उसके जीवन-दर्शन की प्रतिच्छाया हो।

वर्माजी के ऐतिहासिक उपन्यासों के आदर्श पात्र युग की प्रकाश-किरणें तो आत्मसात् करते ही हैं, अपने स्वतन्त्र व्यक्तित्व द्वारा युग का मार्ग-दर्शन भी करते हैं। वे अपने चारों ओर की विषम परिस्थितियों में से जीवन का एक निश्चित पथ चुनकर, जीवन में उपस्थित होने वाली कठिनाइयों को सुलझाते हुए अपने जीवन को सफल बनाते हैं।

लेखक के उपन्यासों के लगभग सभी पात्र आचरण को नीति-सम्मत बनाए रखना परमावश्यक समझते हैं। समाज की सुदृढ़ता, सुव्यवस्था और स्वास्थ्य के लिए नैतिक मर्यादाओं का पालन करना अपना कर्त्तव्य मानते हैं। कचनार, कुमुद, तारा, मोतीबाई, जूही, लक्ष्मीबाई, अहिल्याबाई, दुर्गावती, मांधवजी सिन्धिया आदि अनेकानेक पात्रों ने नैतिक मर्यादाओं का पालन करके अपने चरित्र को परमोज्ज्वल बना लिया है। उनका चरित्र एक अनूठी गरिमा से मण्डित है।

परिवार और नैतिकता

जीवन का आधार पारस्परिक सहयोग एवं सेवा विनिमय है। मनुष्य अपने को सामाजिक एकता के सूत्र में आवद्ध करने का प्रयत्न करता है। सामाजिक संगठन में ही आचार-विचार, आदर्श आदि की एकता, संगठन-शक्ति एवं सामूहिक विकास सम्भव है।

मानव जीवन में पारस्परिक सम्पर्क और सहयोग नितान्त आवश्यक है। मनुष्य का व्यावहारिक ज्ञान ही इसे सफल बनाता है।

पारिवारिक जीवन सामाजिक जीवन का आधार-स्तम्भ है। परिवार मनुष्य को सुख, सन्तोप, और सुविधा प्रदान करता है। उसे सामाजिक स्तर प्रदान करने में भी परिवार का प्रमुख योगदान रहता है। मनुष्य सहिष्णुता तथा पारस्परिकता के सम्बन्ध परिवार से ही सीखता है। चरित्र-निर्माण में परिवार का योगदान स्वतःसिद्ध है। शिशु के व्यक्तित्व का विकास परिवार में होना है। परम्पराओं की शिक्षा भी उसे परिवार से ही प्राप्त होती है।

पारिवारिक जीवन का आधार ही प्रेम, स्नेह, वात्सल्य आदि मनोभाव हैं। सहजता, समरसता, त्यागमयता एवं निःस्वार्थता आदि गुण पारिवारिक जीवन के आधार-स्तम्भ हैं।

वर्माजी ने अपने उपन्यासों में पारिवारिक जीवन के आदर्शमय चित्र खींचे हैं। पति तथा पत्नी के मधुर, मादक सम्बन्धों में उन्होंने कर्तव्य-सजगता को प्रमुख स्थान दिया है। पत्नी अपने पति को स्नेहालिंगन में बाँधकर कर्तव्य-च्युत नहीं

करती। जन-हित के कार्य की प्रेरणा देती हुई कहती है कि अथक लगन, परिश्रम और कलाबोध की इस पारस पथरी से मानव-कष्ट सरलता से दूर किया जा सकता है।[१] वह स्वयं को पुरुष की अर्धांगिनी समझती है[२] तथा कर्त्तव्य-पालन में सक्रिय सहयोग देने के लिए भी परम उत्सुक है। वर्माजी के उपन्यासों की लगभग सभी पत्नियाँ कर्त्तव्य-पालन के लिए विशेप रूप से सचेष्ट हैं। पारिवारिक सुख-सन्तोष के साथ ही साथ उनकी मानवतावादी दृष्टि समाज तथा देश की सुख समृद्धि के स्वप्न भी देखती है।

पति और पत्नी के अतिरिक्त पारिवारिक जीवन में माँ तथा सन्तान का सम्बन्ध भी अत्यन्त मधुर है। सन्तान से अगाध स्नेह करते हुए भी वर्माजी के उपन्यासों में मां स्वार्थ-साधन में लिप्त नहीं है। परिवार की शान्ति के लिए स्वार्थ-त्याग करके वह अपनी महानता का परिचय तो देती ही है, अपनी सन्तान के हृदय में अच्छे संस्कारों के बीज भी बो देती है। मृगनयनी अपने पुत्र द्वय को राज्य नहीं दिलवाती, वह बड़ी रानी के पुत्र को राज्य प्रदान करने का मानसिंह से आग्रह करती है। उसकी कर्त्तव्य-भावना अत्यधिक प्रबल है। वह क्षुद्र स्वार्थों तथा सांसारिक सुख-सुविधाओं को प्राप्त करने के लिए कर्तव्य-पथ से विचलित नहीं होती। उसकी दृढ़ धारणा है कि संकल्प और भावना जीवन तकड़ी के दो पलड़े हैं, जिसको भार से लाद दीजिये, वही नीचे चला जायेगा। संकल्प कर्त्तव्य है और भावना कला। दोनों के समान समन्वय की आवश्यकता है।[३]

परिवार में भाई-बहन का स्निग्ध स्नेह सरसता बनाये रखता है। वर्माजी ने बहन को आज्ञानुवर्तिनी, विनम्र एवं अबोध दिखाया है। मातृ-पितृ विहीना रतन अपने भाई के संरक्षण में सरल जीवन व्यतीत करती है। उसके समस्त कार्य, विचार तथा व्यवहार भाई द्वारा परिचालित होते हैं।[४] भाई ललितसेन भी बहन का परम हित-चिन्तक है। उसे प्राणों से भी अधिक प्यार करता है। बहन के लिए बड़े से बड़ा त्याग करने में तनिक भी संकोच नहीं करता।

परिवार में भाभी के लिए बड़ी कोमल भावनाएँ विद्यमान रहती हैं। मृगनयनी के हृदय में अपनी भाभी लाखी के लिए असीम अनुराग है। वह उसके हित-चिन्तन और कष्ट-हरण के लिए सचेष्ट रहती है और समाज में सम्मानित पद

---

१. महारानी दुर्गावती, पृ० १७३।

२. वही, पृ० १९०-१९१।

३. मृगनयनी, पृ० ४८७।

४. कुण्डली-चक्र, पृ० १।

दिलवाने के लिए यथासम्भव प्रयत्न करती है।[१] लेखक ने भाभी के रूप में नारी को सम्मान, आदर और पूज्य-भावना से अभिषिक्त किया है।

लेखक ने पारिवारिक जीवन में सुख, शान्ति, सन्तोष एवं स्वार्थ-त्याग की भावना को स्थान दिया है। वह मानसिक और बौद्धिक विकास के लिए पारिवारिक शान्ति आवश्यक समझता है।

आचार एवं व्यवहार

व्यक्ति आत्म-नियन्त्रण की शिक्षा परिवार से ही पाता है। परिवार व्यक्ति को दुर्वासनाओं के प्रभाव से मुक्ति दिलाकर उसे स्वतन्त्र एवं सुखी बनाने की चेष्टा करता है। किसी व्यक्ति को नैतिक दृष्टि से तब तक श्रेष्ठ नहीं कहा जा सकता जब तक उसके चिन्तन के पीछे मानव-कल्याण की सचेत भावना न हो।

व्यक्ति को व्यवहारकुशलता एवम् आचार-सम्बन्धी दृढ़ता उसकी उन्नति एवम् समृद्धि की आधारशिला है। विविध गुणों के कारण मानव यश प्राप्त करता है। सत् प्रवृत्तियाँ मनुष्य के अभ्युदय में सहायक होती हैं। नीतिकारों के अनुसार गुणों के द्वारा संसार में कोई अप्राप्य वस्तु नहीं। वर्माजी के उपन्यासों के पात्र व्यवहारकुशल भी हैं और उनके विभिन्न गुण उनकी नैतिक उन्नति के परिचायक हैं।

दानशीलता

वर्माजी ने इतिहास के पृष्ठ पलटकर उज्ज्वल नारी-रत्नों को खोज निकाला है। अहिल्याबाई, लक्ष्मीबाई, दुर्गावती, अवन्तीबाई आदि महान नारियाँ सर्वस्व दान कर सरल, सादा और स्वच्छ जीवन व्यतीत करती हैं।

दयालुता एवम् शरणागतवत्सलता

'वर्माजी के पात्रों में दानशीलता के अतिरिक्त दयालुता भी कूट-कूटकर भरी है। लक्ष्मीबाई की उदारता हृदय-स्पर्शिनी है। अपने शत्रु अंग्रेज़ स्त्रियों, पुरुषों एवम् बालकों की दयनीय स्थिति से द्रवित होकर वह तत्काल अपनी सहेलियों के साथ उनके लिए दो मन रोटियाँ भिजवाती हैं।[२] इसी प्रकार अवन्तीबाई अष्ट-वर्षीय अंग्रेज़ बालक को उसके पिता के पास पहुँचाकर अपनी दयालुता का परि-

१. मृगनयनी, ६२, ८६, ८७, ८८, ३७७।
२. झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई, पृ० २५८।

चय देती हैं।[१] दुर्गावती विश्वासघाती सुघरसिंह की शोचनीय दशा देखकर दया से भर उठती है। वैद्य से उसका उपचार करवाती है तथा मुगलोंसे उसे बचाना अपना धर्म समझती है। इन तीनों रानियों की दयालुता एवम् शरणागत वत्सलता सराहनीय है। अहिल्याबाई तो दया की प्रतिमूर्ति ही है। परिचारिका सिन्दूरी के रोगग्रस्त हो जाने पर स्वयम् उसकी परिचर्या दत्तचित्त होकर करती है।[२] माधवजी सिंधिया की दयालुता एवम् शरणागत-वत्सलता प्रेरक है। अपनी "खास कलम" गन्ना की परिचर्या करना वह अपना कर्त्तव्य समझता है। धौम्य ऋषि की शरणागतवत्सलता का तो कहना ही क्या ? शूद्र और दास कपिंजल को शरण देकर न वे केवल उसकी रक्षा करते हैं वरन् उसकी बौद्धिक एवम् आध्यात्मिक उन्नति को भी शिखर तक पहुँचा देते हैं।

त्याग एवम् क्षमा

दयालुता के अतिरिक्त वर्माजी के पात्र त्याग एवम् क्षमा के निसर्ग गुणों से विभूषित हैं। मृगनयनी का त्याग अभूतपूर्व है। राज्य-हित के लिए वह अपने पुत्र को राज्य न दिलवाकर, सुमनमोहिनी के पुत्र को राज्य दिलवाती है।[३] कचनार महलों का ऐश्वर्य त्यागकर छावनी का कठोर जीवन अंगीकार करती है।[४] मोती-बाई, जूही, तथा सुन्दर स्वातन्त्र्य-समर में भाग लेने के लिए वैवाहिक सुख का त्याग कर अपनी नैतिक-उच्चता का परिचय देती है।[५] तात्या टोपे का त्याग अनु-करणीय है। स्वतन्त्रता-संग्राम का यह अप्रतिम योद्धा सांसारिक सुख-सुविधाओं का त्याग कर संपूर्ण भारत में स्वतन्त्रता का शंखनाद कर स्वतन्त्रता-समर के लिए जनता का आह्वान करता है।

त्याग के अतिरिक्त तात्या की क्षमाशीलता भी स्तुत्य है। वह कर्मठ योद्धा आज्ञानुवर्ती है। नाना के अनुचित प्रस्ताव (जूही के नृत्य की इच्छा) को वह क्षमा कर देता है। मृगनयनी भी क्षमा की प्रतिमूर्ति है। बड़ी रानी सुमनमोहिनी के कुचक्रों और षड्यन्त्रों से अवगत होकर भी वह उसके भयंकर अपराधों को

---

१. रामगढ़ की रानी, पृ० १५७-५८।
२. अहिल्याबाई, पृ० ७८।
३. मृगनयनी, पृ० ४८६।
४. कचनार, पृ० १७७-७८।
५. झाँसी की रानी, पृ० २१२, ४५६-५७।

उदारतापूर्वक क्षमा कर देती है।[१] इसी प्रकार जानकी अपने विपथगामी एवम् अकर्मण्य पति को क्षमा करके उसे सत्-पथ पर खींच लाती है।[२]

धैर्य एवम् सन्तोष

दया एवम् क्षमा के अतिरिक्त वर्माजी के पात्रों में धैर्य एवम् सन्तोष का भी प्राचुर्य है। कठिन से कठिन परिस्थितियों में भी वर्माजी के पात्र धैर्य का दामन नहीं छोड़ते। रानी लक्ष्मीबाई फौलाद के समान दृढ़ है। विकट परिस्थिति में वह स्वयं भी धैर्य धारण किए रहती है और अपने सम्पर्क में आने वाले अन्य व्यक्तियों को भी धैर्य प्रदान करती रहती है।[३] उसकी सहज मुस्कान सदैव विपदग्रस्त व्यक्तियों को भी धैर्य प्रदान करती रहती है।

अहिल्याबाई तो धैर्य तथा सन्तोष की प्रतिमूर्ति ही हैं। पुत्र, दौहित्र, दामाद तथा पुत्री के देहावसान से वह एक बार तो शोक-संतप्त हो उठती है, परन्तु शीघ्र ही धैर्य-धारण कर धर्माचरण-रत होकर सन्तोष प्राप्त कर लेती हैं। दुर्गावती एवम् अवन्तीबाई भी युद्ध-प्रांगण में शक्तिशाली शत्रुओं का सामना परम धैर्य के साथ करती हैं।

कुमुद का सन्तोष-भरा जीवन तो उसे देवत्व-पद पर प्रतिष्ठित कर देता है। यौवनोचित चंचलता, अल्हड़ता एवम् सरलता खोकर वह शांत और परम संतोषी हो जाती है।

उत्साह एवम् दृढ़ता

वर्माजी के पात्रों का धैर्य एवम् संतोष उन्हें अकर्मण्य तथा विलासी नहीं बनाता। वे उत्साह की उमंग में कठिन से कठिन कार्य सरलता तथा सफलता से सम्पादित करने की क्षमता रखते हैं। स्वतन्त्रता-संग्राम की दीवानी अवन्तीबाई उत्साह-बहुलता के कारण सीमित साधनों के होते हुए भी अत्यन्त दृढ़ता से युद्ध करती है तथा शक्तिशाली अंग्रेजों के छक्के छुड़ा देती है।[४]

लक्ष्मीबाई के उत्साह का तो कहना ही क्या? वह स्वातन्त्र्य-समर की अद्-भुत सेनानी है। मार्ग की किसी भी बाधा अथवा कठिनाई से विचलित न होकर

---

१. मृगनयनी, पृ० ३८५।
२. संगम, पृ० २१६।
३. झाँसी की रानी, पृ० ३२०।
४. रामगढ़ की रानी, पृ० १६६-७०।

युद्ध-प्रांगण में दृढ़तापूर्वक बढ़ती जाती है ।[१] लक्ष्मीबाई का साहचर्य पाकर मोती-बाई, जूही, काशीबाई और झलकारी दुलैया का उत्साह भी मानो सीमा तोड़-कर बह निकलता है । ये नारी रत्न भी दृढ़ता का लौह-कवच पहनकर रण-प्रांगण में कूद पड़ती हैं । तात्या टोपे का अमित उत्साह और फौलादी दृढ़ता स्तुत्य है । माधवजी सिंधिया भी टोपे से कम नहीं ।

मृदुता तथा मितभाषिता

वर्माजी के उत्साही, दृढ़, वीर तथा साहसी पात्र कठोर एवम् कर्कश नहीं हैं। उनका व्यवहार अत्यन्त मृदुल तथा मधुर है । अपने परिचय-क्षेत्र में आने वाले प्रत्येक व्यक्ति से ये पात्र बहुत मृदु-व्यवहार करते हैं ।

लक्ष्मीबाई और अहिल्याबाई अपनी दासियों को अपने मृदु-व्यवहार के कारण अपनी सहेली तथा पुत्री के प्रतिष्ठित पद पर आसीन कर लेती हैं । दुर्गा-वती, मृगनयनी, कचनार एवम् कुमुद की मृदुलता मर्मस्पर्शिनी है । ये नारी-रत्न मृदुभाषी एवम् मितभाषी हैं । व्यर्थ एवम् अनर्गल वार्तालाप इनकी रुचि के प्रतिकूल है ।

तात्या, हृदय की कोमल अनुभूतियों से परिचित नहीं परन्तु फिर भी वह अत्यन्त मितभाषी है तथा अपनी मृदुवाणी के कारण सम्पूर्ण भारत को एक सूत्र में पिरोने की क्षमता रखता है ।

राजा रोमक मृदु-वाणी द्वारा पुनः राज्य प्राप्त करने में समर्थ होता है तथा धौम्य ऋषि की मृदु-वाणी तो पीयूष-वर्षिणी है ।

विश्वास एवम् कृतज्ञता

वर्माजी के सरल-चित्त और पवित्र-हृदय पात्र सहज ही दूसरों पर विश्वास कर बैठते हैं । अहिल्याबाई मल्हारराव पर सदैव विश्वास करती रही । दुर्गावती का सरल हृदय, नीच, प्रपंची, कुटिल तथा विश्वासघाती सुघरसिंह पर भी अविश्वास न कर सका । नूरबाई ने अपने हृदय का सम्पूर्ण विश्वास सैनिक मोहन के चरणों में अर्पित करके अपना जीवन धन्य किया । निरीह, कोमल एवम् भावुक रतन भुजबल जैसे निकृष्ट प्राणी पर आजीवन विश्वास करती रही ।

जब किसी व्यक्ति पर पूर्ण विश्वास स्थापित हो जाता है तब उसके सद्-कार्यों के लिए हृदय में कृतज्ञता के भाव उदित होने लगते हैं । लक्ष्मीबाई, अवन्ती-

---

१. झाँसी की रानी, पृ० २८२ ।

बाई, अहिल्याबाई तथा दुर्गावती अपने सैनिकों के प्रति अति कृतज्ञ हैं जो परस्पर विश्वास के कारण इन पर प्राण अर्पित करने में भी संकुचित नहीं होते।

चरखारीवाली और मुसाहिब जू अपने विश्वास-पात्र सेवकों के प्रति अत्यधिक कृतज्ञ हैं क्योंकि उन्होंने इनके हित-साधन के लिए स्वयम् को विपत्ति में डाला।

वर्माजी के उपन्यासों का विश्लेषण करने पर सहज ही समझा जा सकता है कि वे नैतिक मूल्यों के विषय में विशेष रूप से सचेष्ट हैं। उनके लगभग सभी पात्र नैतिक आदर्शों का प्रतिपालन करके अपना जीवन तो गौरवपूर्ण बनाते ही हैं, समाज को सत्पथ पर बनाये रखने की चेष्टा भी करते हैं।

सदाचरण करने वाला मनुष्य जो नैतिक मर्यादा का पालन करता है काम, क्रोध, शोक, भय, लज्जा एवं कपट से बचकर चलता है। ये मानव के दुर्गुण हैं और सदाचारी एवं श्रेष्ठ व्यक्ति यथासम्भव इनसे दूर रहने की चेष्टा करते हैं।

काम

काम का वासनात्मक रूप अत्यन्त गर्हित एवं घृणास्पद है। गीता में इसे बुद्धि नाश एवं सर्वनाश का कारण बताया है। काम को धर्म-विरोधी माना जाता है।

प्राचीन संस्कृति के पुजारी वर्माजी ने अपने उपन्यासों में प्रेम को वासना के सूक्ष्मातिसूक्ष्म स्पर्श से बचाया है। वर्माजी प्रणय-भावना को मानव-हृदय की शाश्वत और स्वाभाविक अवस्था मानते हैं। इसका शमन सम्भव नहीं, अतः वे नारी और पुरुष को प्रेम करने की स्वतंत्रता प्रदान करते हैं, परन्तु वह प्रेम वासना, आसक्ति एवं मोह की संकीर्ण सीमाओं से विमुक्त है। उस प्रेम में स्वार्थपरता नहीं, त्याग तथा उत्सर्ग की भावना गुंफित है। प्रेम का अत्यन्त पुनीत रूप कुमुद के प्रणय में द्रष्टव्य है। वह कुंजर को प्राण-पण से प्रेम करती है। परन्तु प्रेम उसे दिग्भ्रमित नहीं करता। प्रेम की पुनीत ज्योति उसके मानस को आलोकित किये रहती है और वह अपने देवी रूप की रक्षा करती है। कभी पथ-भ्रष्ट होकर विपथ-गामिनी नहीं होती।[१] इसी प्रकार गौरी के सरल, निश्छल एवं निःस्वार्थ प्रेम में एकनिष्ठा की कमी नहीं। अपने प्रणयी के लिए वह त्याग एवं बलिदान की प्रतिमूर्ति बन जाती है। दारुण दुख झेलकर अपने प्रेमी के पथ में सुमन बिछा देती है।[२]

---

१. विराटा की पद्मिनी, पृ० २४४, ३१२, ३३६, ३३९, ३७७।

२. भुवन विक्रम, पृ० १४५, ३०७, ३३३।

वर्माजी के अनुसार प्रेम में शारीरिक आकर्षण का कोई मूल्य नहीं। एकनिष्ठा एवं अनन्यता ही प्रेम का आदर्श है। कचनार अनेक विपत्तियों और कठिनाइयों का सामना करती है परन्तु कभी मुखरा बनकर दिलीप के प्रति अपना प्रेम प्रकट नहीं करती।[१] सरस्वती में भी यही एकनिष्ठा विद्यमान है। वह मौन रहती है और प्रणय की प्रतिष्ठा के लिए प्राणोत्सर्ग कर देती है।[२] तारा का प्रेम सम्बन्धी आदर्श अत्यधिक उच्च है। वह दिवाकर के क्षेम के लिए सक्रिय प्रयत्न करती है तथा उसके साथ संसार के सुख, ऐश्वर्य त्यागकर योग-साधन हेतु वन की ओर प्रस्थान करती है।[३]

लेखक प्रेम को आदर्शमय रूप में ही चित्रित करता है। प्रेम प्रगति का अन्त नहीं है वरन् चरम-विकास का साधन है। मोतीबाई, जूही और सुन्दर के हृदय की प्रणय भावना अत्यन्त सौम्य, पवित्र एवं शान्तिदायिनी है। इनके प्रेम में शुभ्रता, शालीनता, एवं सुकुमारता है। इनका प्रेम कल्याणकारी एवं आनन्ददायक है।[४]

गंगा का मूक प्रेम अगाध है। वह अपने प्रेमी का शारीरिक कष्ट तक सहन नहीं कर पाती, स्वयं प्रहार सहन करती है और उसे जीवनदान देकर आत्मिक सुख प्राप्त करती है।

वर्माजी एकनिष्ठता शून्य, असंयमित तथा उच्छृंखल प्रेम को अनुचित समझते हैं। प्रेम-कल्पना में अतीन्द्रियता एव निर्मलता को आवश्यक मानते हैं। वे प्रेम की महानता एवं शुचिता को प्रतिष्ठापित करना चाहते हैं। वे आत्माओं के मिलन में ही प्रेम की सार्थकता मानते हैं। आत्म-समर्पण की कसौटी पर कसकर ही प्रेम का उज्ज्वल रूप और भी निखरता है। लेखक प्रेम को जीवन की ज्योति मानता है जो जीवन-पथ पर शक्ति एवं साहस के साथ बढ़ने की प्रेरणा देता है।

क्रोध

काम-वासना के अतिरिक्त धर्म एवं व्यवहार दोनों ही दृष्टियों से क्रोध को गर्हणीय कहा गया है। क्रोधाभिभूत होने से विवेक नष्ट हो जाता है और मनुष्य कर्त्तव्य-ज्ञान खोकर असदाचरण करना प्रारम्भ कर देता है।

---

१. कचनार, पृ० १०२, १०४, १८१, ३०६।
४. प्रेम की भेंट, पृ० ८६, १४०, १४१।
३. गढ़ कुण्डार, पृ० ३२०, ४०५, ४१६, ४२१, ४२२।
४. झाँसी की रानी, पृ० २१२, ४१६, ४३६, ४५६।

वर्माजी ने अपने उपन्यासों में सदाचरण को विशेष स्थान दिया है। इनके लगभग सभी पात्रों का विवेक अत्यधिक उन्नत है। दुर्गावती, सुघरसिंह के विश्वास-घात एवं कृतघ्नता को देखकर भी क्रोधित नहीं होती प्रत्युत अपनी उदारता का परिचय देती हुई उसकी सुरक्षा तथा उपचार का प्रबन्ध करवा देती है। इसी प्रकार अहिल्याबाई मल्हारराव की उच्छृंखलता, उद्दण्डता एवं अशिष्टता को सदैव क्षमा करती रही, परन्तु जब उसने सिन्दूरी के सतीत्व-हरण का प्रयास किया तब क्रोधान्ध होकर उसने मल्हार पर कर-प्रहार किया। अपने इस क्रोध पर फिर उसे अत्यधिक दुःख एवं ग्लानि हुई।

दूल्हाजू ने सुन्दर से घृणित प्रस्ताव किया। उसकी इस धृष्टता पर लक्ष्मीबाई ने क्रोध में भरकर अपना विवेक नष्ट नहीं होने दिया प्रत्युत कुशलतापूर्वक उसे विरत किया।

आत्म-सम्मान एवं स्वाभिमान-रक्षण के लिए अवन्तीबाई विशेष रूप से सचेष्ट है। सरकारी अफसर के दुर्व्यवहार से क्षुब्ध होकर वह उसके एक चाँटा जड़ देती है।

मृगनयनी आजीवन सुमन मोहिनी के कुचक्रों एवं षड्यन्त्रों से मानसिक कष्ट पाती है परन्तु फिर भी वह क्रोधाभिभूत होकर अपना मानसिक सन्तुलन नहीं त्यागती। इसी प्रकार रतन भुजबल के षड्यन्त्र का परिचय पाकर क्रोधित नहीं होती अपितु सौत का स्वागत करने के लिए सहर्ष स्वीकृति दे देती है।

वर्माजी के पात्रों का विवेक उन्नत है। हृदय की सामान्य दुर्बलताओं को विजित कर वे समाज में सद्व्यवहार तथा सदाचरण का उदाहरण रखते हैं।

शोक

क्रोध के समान ही शोक भी मनुष्य की विवेक-शक्ति पर प्रहार करता है। शोकाविष्ट मनुष्य की मानसिक शान्ति नष्ट हो जाती है और वह उचित-अनुचित, करणीय-अकरणीय का ज्ञान खो देता है।

वर्माजी के पात्रों का मानसिक धरातल अत्यन्त उच्च है। उनके आदर्श, उन्हें अपने पथ से विचलित नहीं कर पाते, इसलिए शीघ्रातिशीघ्र अपने शोक पर विजय प्राप्त कर वे अपने निर्दिष्ट पथ पर बढ़ते जाते हैं।

लक्ष्मीबाई, दुर्गावती एवं अवन्तीबाई को अल्पायु में वैधव्य धारण करना पड़ता है। ये नारी रत्न शोकाभिभूत होकर जड़ नहीं हो जातीं। अपने उच्च आदर्शों की पूर्ति के लिए ये हृदय को वश में करती हैं तथा उद्देश्य-पूर्ति के लिए क्रियाशील होती हैं।

अहिल्याबाई को पति, पुत्र, पुत्री, दामाद एवं दौहित्र का मृत्यु-शोक वहन करना पड़ता है। वह शोक, कष्ट एवं अशान्ति की भँवरों में डूबने-उतराने लगती है। उसके हृदय में भयंकर द्वन्द्व छिड़ जाता है परन्तु शीघ्र ही वह प्रबल संयम से अपने अशान्त हृदय को सँभालती है और जीवन की सफलता के लिए धर्माचरण एवं कर्तव्य-पालन में रत हो जाती है।

वर्माजी के लगभग सभी पात्र, विशेष रूप से नारी-पात्र दिग्भ्रमित व्यक्तियों के लिए आकाशदीप के समान हैं। वर्माजी ने सदाचरण का आदर्श स्थापित करने के लिए उन्हें यथासम्भव, दुर्गुणों से बचाया है।

धर्म-नीति

वर्माजी के पात्रों ने लोक के साथ-साथ आत्मा से भी सम्बन्ध स्थापित कर लिया है। इस प्रकार उनकी धर्म-नीति ने उन्हें आध्यात्मिक उन्नति के शिखर पर पहुँचा दिया है। वर्माजी के पात्र धर्म को जीवन की आधारशिला मानते हैं परन्तु वे धर्म के विषय में अपना स्वतन्त्र दृष्टिकोण रखते हैं।

आशावाद

भारतीय विचारधारा में प्राचीनकाल से संसार असार है, जीवन क्षण-भंगुर एवं मिथ्या है, इस प्रकार की निराशावादी भावनाओं का प्राचुर्य रहा है। इस भावना ने मनुष्य को शक्तिहीन, उत्साहहीन एवं आदर्शहीन बना दिया है। निराशा से अभिभूत व्यक्ति जीवन की किसी भी समस्या को सुलझाने में असमर्थ होता है।

वर्माजी के पात्र जीवन के प्रति आस्था रखते हैं। उनके जीवन का लक्ष्य उत्साह-पूर्वक समस्त विघ्न-बाधाओं को पार करके उत्तरोत्तर उन्नति-पथ पर अग्रसर होते रहना है। उनके पात्रों में उत्साह, उल्लास एवं ओज छलका पड़ता है।

पवित्रता

वर्माजी के ये आदर्शोन्मुख पात्र आशावादी हैं। परिणामस्वरूप वे अपने जीवन की सफलता का मूल्यांकन लौकिक पदार्थों या ऐश्वर्य की प्राप्ति में नहीं करते। वे आत्मपरीक्षण द्वारा भावों की पवित्रता तथा चरित्र की दृढ़ता में ही धर्म का मूल खोजते हैं। पाप-उन्मूलन, सच्चरित्रता-प्राप्ति एवं पवित्र-संकल्प—वर्माजी के पात्रों के अमूल्य गुण हैं।

वर्माजी के उन्पयासों में आशावादिता तथा पवित्रता यत्र-तत्र-सर्वत्र दिखाई देती है। इनके पात्र जीवन की कठिनाइयों, निराशाओं एवं असफलताओं से शोकाभिभूत होकर अकर्मण्य नहीं हो जाते। वे गीता के कर्मयोग में विश्वास रखते हैं और फलाफल की चिन्ता नहीं करते।

उनके प्रत्येक कार्य भगवान के चरणों में अर्पित हैं। 'अहिल्यावाई' उपन्यास में अहिल्यावाई निष्काम कर्म में आस्था व्यक्त करते हुए कहती है कि यह सब कुछ मेरा नहीं है। जिसका है उसी के पास भेजती हूँ। जो कुछ लेती हूँ, वह मेरे ऊपर ऋण है।[1]

इस पुनीत भावना के साथ आजीवन सत्कार्य करके वर्माजी के पात्र हँसते-हँसते मृत्यु का वरण करते हैं। एक दिन सबको मरना है, परन्तु सत्कार्य में प्राण देना, भगवान का ध्यान करते मरना, यह जन्मभर की अच्छी कमाई से ही प्राप्त होता है। आत्मा अमर है। शरीर का चाहे जो कुछ हो, वही एक प्रकार शेष रहता है।[2] जब मृत्यु का भय न रहे, मरण का वरण अमरत्व प्रदान करने वाला हो जाता है। असफलताजनित निराशा अकर्मण्यता को जन्म नहीं देती, प्रत्युत पुनः वही कार्य अनवरत रूप से करते रहने की प्रेरणा देती है।

कर्तव्य भावना

कर्तव्य-भावना भी पवित्रता की भावना की सहचरी है। इनका परस्पर घनिष्ठ सम्बन्ध है। यह मानव स्वभाव है कि वह सुख-अभिलाषा अथवा दुःख के भय से ही किसी कार्य में प्रवृत्त अथवा निवृत्त होता है। वर्माजी के पात्र कर्तव्य करते समय सुख-दुःख की भावना को कोई स्थान नहीं देते। वे तो 'सुखे-दुःखे समे कृत्वा' के अनुसार विशुद्ध कर्तव्य-बुद्धि से ही अपने कार्य सम्पादित करते हैं। वर्मा जी के आदर्श-हीन पात्रों में (जो संख्या में कम हैं) यह कल्याण भावना अवश्य दृष्टिगत नहीं होती परन्तु उनके आदर्श पात्रों की यह दृढ़ धारणा है कि सत्य बोलना, संयत जीवन व्यतीत करना, विपत्तियों में भी कर्तव्य-च्युत न होना ही उनके जीवन का प्रधान लक्ष्य है। वे संसार से निरपेक्ष एवं अनासक्त होकर आजीवन कर्तव्यपालन में रत रहते हैं।

वे जब जो कर्तव्य सामने आये उसका दृढ़ता के साथ पालन करते हैं। चाहे वह कर्तव्य किसी पापी के मारने से सम्बन्ध रखता हो चाहे किसी दीन-दुखिया

---

१. अहिल्याबाई, पृ० २२।

२. झाँसी की रानी, पृ० ४१६।

के दुःख-हरण, हित करने या किसी भी निष्काम कर्म करने से सम्बन्ध रखता हो।[1] 'समकाय' और 'दत्तचित्त' होकर कार्य-सम्पादन करना वे जीवन की सफलता के लिए आवश्यक समझते हैं। वे जानते हैं कि कठिनाइयों तथा विपत्तियों का साहस के साथ सामना करने तथा हृदय को आनन्द तथा मानसिक सुख-सन्तोष प्रदान करने के लिए धर्माचरण तथा कर्तव्य-पालन आवश्यक है।[2] वर्माजी के पात्र स्वयं भी कर्तव्य-पालन करते हैं तथा अपने सम्पर्क में आनेवाले अन्य व्यक्तियों को भी कर्तव्य-पालन करने की प्रेरणा देते हैं क्योंकि उनका विश्वास है कि संकल्प और भावना जीवन-तकड़ी के दो पलड़े हैं। जिसको भार से लाद दीजिए, वही नीचे चला जाएगा। संकल्प कर्तव्य है और भावना कला, दोनों के समान समन्वय की आवश्यकता है।[3]

यह मंगल भावना मनुष्य को सतत कर्तव्यशील बनाने के लिए प्रेरणा देती हुई वर्माजी के उपन्यासों में सर्वत्र दृष्टिगोचर होती है।

आत्मविश्वास अथवा आत्मसम्मान

सत्य की तथा आशावाद की भावना ही आत्मसम्मान अथवा आत्मविश्वास की भावना के रूप में परिणत होती है। वर्माजी के उपन्यासों के लगभग सभी पात्र कर्तव्य-पालन तथा आत्मसम्मान को जीवन के लिए आवश्यक समझते हैं। वे आत्मसम्मान-विहीन जीवन को पशु-तुल्य समझते हैं। यदि जीवन में गौरव प्राप्त न हो, सम्मान न मिले तो ऐसे निकृष्ट तथा अपमानजनक जीवन से तो मृत्यु श्रेयस्कर है।

कचनार आत्मसम्मान-विहीन जीवन की कल्पना तक नहीं कर सकती। वह महलों के वैभव-विलास, सुख तथा ऐश्वर्य के लिए स्त्रीत्व एवं नारीत्व को कलंकित करना अपने आत्मसम्मान के विरुद्ध समझती है। दिलीपसिंह की पुजारिनी कचनार, अपने आत्मसम्मान की रक्षा के लिए छावनी का कठोर जीवन सहर्ष स्वीकार कर लेती है।[4]

इसी प्रकार निर्धन, निःस्सहाय तथा निर्बल गोमती का आत्मसम्मान भी अपूर्व है। वह कुमुद का आश्रय स्वीकार कर लेती है। उसका जीवन नीरस, दुखी, व्यर्थ एवं लक्ष्य-विहीन हो उठता है परन्तु वह पति-प्रेम-वंचिता नारी राजा देवीसिंह

---

१. महारानी दुर्गावती, पृ० २८।
२. अहिल्याबाई, पृ० १६७।
३. मृगनयनी, पृ० ४८७।
४. कचनार, पृ० २५-२७।

के उन महलों में जाना नहीं चाहती, जहाँ सम्मान के साथ प्रवेश न हो।[1] अपने आत्मसम्मान की रक्षा के लिए अपने प्राणों की आहुति चढ़ाने में भी उसे संकोच नहीं होता।

लाखी का आत्मसम्मान भी अपूर्व है। वह जीवन में अनेकानेक विपत्तियों का सामना करती है, कष्टों तथा बाधाओं को स्वीकार करती है परन्तु आत्म-सम्मान त्यागकर मृगनयनी के सामने आश्रय का आँचल नहीं पसारती।

दुर्गावती, लक्ष्मीबाई तथा अवन्तीबाई का उत्कट देश-प्रेम उन्हें अपरिमित शक्ति तथा असीमित शौर्य प्रदान करता है। वे अत्यल्प युद्ध सामग्री से शक्ति-शाली शत्रु का सामना अद्भुत वीरता तथा साहस से करती हैं। सैनिक खेत रहते हैं, आश्रय-स्थल छूट जाते हैं, युद्ध-सामग्री समाप्त हो जाती है, शरीर क्षत-विक्षत हो जाता है, परन्तु वे शत्रु के सामने आत्मसमर्पण कर अपने आत्मसम्मान को तिलां-जलि नहीं देतीं। वर्माजी के उपन्यासों के आदर्श पात्र परिस्थितियों के दास नहीं बने रहना चाहते, अपितु वे उनके स्वामी बनकर जीवन-यापन करना चाहते हैं।

मानवतावादी दृष्टिकोण

वर्माजी के उपन्यास धर्म-संकीर्णता से मुक्त हैं। उनके आदर्श पात्र धर्म में फैले अंधविश्वासों तथा रूढ़ियों को व्यर्थ तथा निरर्थक समझते हैं। उनकी धारणा है कि धर्म जीवन को ऊँचा उठाने की, मानसिक तथा बौद्धिक उन्नति करने की प्रेरणा देता है। धर्म के संकुचित रूप को न अपनाकर वे उसके विशाल मानवता-वादी दृष्टिकोण को अपनाते हैं। उनके प्रत्येक कार्य, प्रत्येक विचार तथा प्रत्येक भाव उसी परम उज्ज्वल, परम पवित्र परमात्मा की ज्योति से आलोकित रहते हैं।

ये पात्र दूसरों का दुःख तथा कष्ट देखकर दयार्द्र हो उठते हैं, किसी की पीड़ा का अनुमान कर करुणा से भर उठते हैं तथा किसी का अभाव देखकर उसे दूर करने का यथासम्भव प्रयत्न करते हैं। वैभव-विलास तथा ऐश्वर्य न उनमें अहंकार तथा गर्व उत्पन्न करता है, न दूसरों को क्षुद्र तथा स्वयं को महान समझने की भावना पैदा करता है।

युग-युग से उपेक्षित, अपमानित तथा कलंकित जीवन व्यतीत करने वाली वेश्या के लिए भी लक्ष्मीबाई के हृदय में सहानुभूति का स्थान है। वेश्या होने के

---

१. विराटा की पद्मिनी, पृ० २६१।

कारण ही वह उन्हें त्याज्य नहीं समझती। पवित्र वातावरण एवम् लक्ष्मीबाई का सत्संग प्राप्त कर वेश्या-पुत्रियाँ मोतीबाई तथा जूही अपना जीवन सफल करती हैं।[१]

इसी प्रकार दासी जीवन की निरर्थकता, निस्सारता तथा निरुपयोगिता से द्रवित होकर लक्ष्मीबाई, अहिल्याबाई एवम् दुर्गावती अपनी सेवा में नियुक्त की गई दासियों को सखी तथा बेटी के प्रतिष्ठित पद पर आसीन कर अपने मानवतावादी दृष्टिकोण का परिचय देती हैं।

वर्माजी के आदर्श पात्रों का मानवतावादी दृष्टिकोण उन्हें उच्चता तथा महानता के शिखर पर पहुँचा देता है। उनके हृदय की कोमलता, संवेदनशीलता तथा मानवता ही उन्हें पर-दुख दूर करने की प्रेरणा प्रदान करती हैं। वे जितने महान कार्य करते हैं, इसी दृष्टिकोण के कारण करते हैं। दुर्गावती धन-संचय करके वैभव-विलास का जीवन व्यतीत करने की अपेक्षा जन-हित के कार्य करती है। अहिल्याबाई सरल, सादा जीवन अपनाती है तथा धर्म और कर्तव्य की वेदी पर अपना समस्त सुख-वैभव न्योछावर कर देती है। लक्ष्मीबाई तथा अवन्तीबाई जनता के दुख से पीड़ित हो उठती हैं। अंग्रेजों के अत्याचार तथा अपमान से जनता की रक्षा करने के लिये वे महलों की वैभवपूर्ण, विश्रामदायिनी गोद छोड़-कर रण-प्रांगण को अपनी सुख-सेज बनाती हैं। ऐश्वर्य का जीवन त्यागकर कष्टों तथा विपत्तियों को गले लगाती हैं। मानवतावादी विचारधारा इन महान नारियों के प्रत्येक सत्कार्य को परिचालित करती है।

वर्माजी के उपन्यासों के अधिकांश पात्रों के जीवन की आधारशिला धर्म है। धर्म से संचालित उनका जीवन विकसित होकर महान हो उठता है। उनकी मान्यताओं, भावनाओं, आकांक्षाओं, विचारों तथा आचरणों को धर्म की छाया शुद्ध, विकसित तथा परिमार्जित कर देती है।

वर्माजी के उपन्यासों में धर्म शब्द नितान्त व्यापक, महनीय एवम् सारगर्भित है। मानव-जीवन की ऐसी कोई भी दिशा नहीं, ऐसा कोई भी क्षेत्र नहीं जो धार्मिक भावना से शून्य हो ; यहाँ तक कि राजनीति में भी वर्माजी ने धर्म को आश्रय दिया है।

---

१. झाँसी की रानी, पृ० ३६४।

५ : : वर्माजी के उपन्यासों में राजनीति

राजा, राज्य अथवा शासन सम्बन्धी नीति को राजनीति नाम से उद्बोधित किया जाता है।

राजा के कर्तव्य और अधिकार

राजा की राजनीति कभी सत्यवादिनी, कभी असत्यवादिनी, किसी समय कठोर एवम् किसी समय प्रिय वोलने वाली, कभी दयालु, कभी हिंस्र, कभी धन लुटाने वाली तो कभी धन संचय करने वाली हुआ करती है।

वर्माजी ऐतिहासिक उपन्यासकार हैं। अतः उन्होंने अनेकानेक राजाओं, ज़मींदारों एवम् सामन्तों का चित्रण किया है। वर्माजी ने राजा के कर्तव्यों और अधिकारों का वर्णन अपने उपन्यासों में यत्र-तत्र किया है।

लेखक राजा की स्वेच्छाचारिता, उच्छृंखलता तथा अनैतिकता के विरुद्ध है। वह राजा के असीम अधिकारों को अनुचित समझता है अतः अपने उपन्यासों में उसने उन्हें सीमित कर दिया है। राजा के अधिकार-क्षेत्र को वह कर्तव्य की अर्गला से मर्यादित करना चाहता है।

उसके उपन्यासों में राजा अपने अधिकारों का दुरुपयोग नहीं करते। वे प्रजा के हित एवं कल्याण के विषय में विशेष रूप से सचेष्ट हैं। प्रजा की आर्थिक उन्नति के साथ ही साथ आध्यात्मिक उन्नति के विषय में भी वे सचेष्ट हैं। इसे वे अपना पुनीत कर्तव्य समझते हैं।

अहिल्याबाई पथ-भ्रष्ट, दुखी, पीड़ित तथा भ्रमित जनता को धर्म-पथ पर चलाना अपना पुनीत कर्तव्य समझती है। मन्दिर निर्मित कर तथा कथावाचकों की नियुक्ति करके एक ओर तो वह जनता के हृदय में सद्भाव जाग्रत करती है, दूसरी ओर अन्नसत्र खोलकर। धर्मशालाएं, तालाब आदि बनवाकर वह प्रजा का कष्ट हरण करने का प्रयत्न करती है।[1]

---

१. अहिल्याबाई, पृ० १३७।

दुर्गावती, लक्ष्मीवाई, अवन्तीवाई एवम् अहिल्यावाई सभी रानियाँ सादा जीवन उच्च विचार की प्रवल पोषिका हैं, शान-शौकत, तड़क-भड़क आदि में उनका विश्वास नहीं। जनता द्वारा प्राप्त धन, ये नारी रत्न उन्हीं के हित एवम् कल्याण के लिए व्यय करती हैं। वे अपने अधिकारों का दुरुपयोग करके ऐश्वर्य एवम् विलासिता में अपने-आपको भूल नहीं जातीं।

राजा एवम् प्रजा के सम्वन्ध

न्याय के अनुकूल आचरण करने वाले एवम् प्रजा की रक्षा सन्तति के समान करने वाले राजा के राज्य में प्रजा सुख और शान्ति के साथ निरन्तर समृद्धि को प्राप्त करती हुई उन्नति के पथ पर अग्रसर होती है।

वर्माजी के उपन्यासों की रानियाँ आदर्श हैं। ये महान रानियाँ देश पर प्राण न्योछावर कर देना अपना कर्तव्य समझती हैं, नैतिकता का पालन करना अपना धर्म मानती हैं, करुणामयी और परदुख-कातर हैं तथा उनका दृष्टिकोण मानवतावादी है। दुर्गावती, अहिल्यावाई, लक्ष्मीवाई तथा अवन्तीवाई, प्रजा का दुख तथा कष्ट देखकर दयार्द्र हो उठती हैं। उनकी पीड़ा का अनुमान कर करुणा से भर उठती हैं तथा उनका अभाव देखकर उसे दूर करने का यथासम्भव प्रयत्न करती हैं। वैभव-विलास तथा ऐश्वर्य न उनमें अहंकार तथा गर्व उत्पन्न करता है, न दूसरों को क्षुद्र तथा स्वयं को महान् समझने की भावना पैदा करता है।

साधारण जनता को अधिकांश राजा क्षुद्र, नगण्य तथा निर्वल समझते थे परन्तु लक्ष्मीवाई "छोटी से छोटी जाति के पुरुष या स्त्री को, गरीव से गरीव मजदूर या किसान को कदापि छोटा नहीं समझती।[१] वह भली-भाँति जानती है कि जनता की शक्ति असीमित है, वही राज्य का आधार है तथा वही राज्य की शोभा है। लक्ष्मीवाई जनता के सुख के लिए, अंग्रेजों के अत्याचारों तथा अन्यायों से उनकी रक्षा करने के लिए, आजीवन, अनवरत प्रयास करती है। अपनी सुख-सुविधाओं को त्यागकर, प्रजा-सुख के लिए प्रयत्नशील रहती है।

महारानी अवन्तीवाई के हृदय में भी युग-युगान्तर से दलित एवम् शोषित जनता के लिए पूर्ण सहानुभूति है। उसके साथ सहृदयता का व्यवहार करना वह अपना कर्तव्य समझती है तथा जनहित के कार्य करना अपना धर्म मानती है। वह भी जनता की असीमित शक्ति को पहचानती है और राज्य-स्थापन के लिए जनता की सुख, समृद्धि एवम् सहायता आवश्यक समझती है। रानी

---

१. झाँसी की रानी, पृ० १९१।

अत्यधिक दयालु तथा सहृदय है। दीन-हीन किसानों की सहायता करती है तथा उनका सत्कार करती है। वह इतनी जनप्रिय हो उठती है कि जनता उसके लिए अपना सिर देने को तत्पर है।

अहिल्यावाई धार्मिक प्रवृत्ति की, करुणामयी, विशालहृदया महान नारी है। उसका समस्त जीवन धर्म पर अवलम्बित है। जीवन का प्रत्येक कार्य वह उसी उच्च भावना के साथ करती है। पथ-भ्रष्ट, दुखी, पीड़ित तथा भ्रमित जनता को धर्म-पथ पर चलाना वह अपना पुनीत कर्तव्य समझती है। मन्दिर निर्मित कर तथा कथावाचकों की नियुक्ति करके एक ओर तो वह जनता के हृदय में सद्भाव जाग्रत करती है, दूसरी ओर अन्नसत्र खोलकर, धर्मशालाएँ, तालाब आदि बनवा-कर वह प्रजा का कष्ट हरने का प्रयत्न करती है।[1]

अहिल्याबाई निष्पक्ष होकर राज्य करती है। बिना अनुसन्धान किए कभी अपना निर्णय नहीं देती।[2] उसकी नीर-क्षीर-विवेकी बुद्धि के कारण प्रजा कहने लगती है कि अहिल्याबाई के राज्य में बकरी और बाघ एक घाट पानी पीते हैं।[3] उसे उसके जीवन-काल में ही 'देवी' कहा जाने लगता है।[4]

महारानी दुर्गावती कर्तव्य-पालन को योग का ही अंग समझती है। विवाहो-परान्त वह दलपतिशाह से राज्य की विस्तृत जानकारी प्राप्त करती है। वह राज्य के कण-कण से परिचय पाने के लिए उत्कंठित रहती है। क्षति-ग्रस्त, पीड़ित तथा कष्ट में पड़ी प्रजा को आश्रय देना, उनका हित-चिन्तन करना वह अपना कर्तव्य समझती है। राजा दलपतिशाह के स्वर्गवास के पश्चात् वह शासन-व्यवस्था अत्य-धिक दृढ़ता एवम् सावधानी के साथ करती है।[5] वह राज्य-हित तथा प्रजा की भलाई के लिए अनेकानेक महान् कार्य करती है।[6] रानी कुशाग्रबुद्धि की तथा विचारवान है। वह जनता की असीमित शक्ति को पहचानती है तथा राजा एवम् प्रजा के बीच मधुर सम्बन्धों की व्याख्या करती है।[7]

महाराजा दलपतिशाह भी आजीवन प्रजा-हित के विषय में सचेष्ट रहा।

---

१. अहिल्याबाई, पृ० १३७।

२. वही, पृ० ९।

३. वही, पृ० १६५।

४. वही, पृ० ३।

५. दुर्गावती, पृ० २४०।

६. वही, पृ० २४१, २५०, २६५।

७. वही, पृ० १८९।

प्रजा को सन्तान-तुल्य प्यार करके उसकी सर्वतोमुखी उन्नति के लिए वह सतत् प्रयास करता रहा।

ग्वालियर का राजा मानसिंह अपनी प्रजा को प्राणों से भी अधिक प्यार करता है। आर्थिक तथा आध्यात्मिक उन्नति के लिए वह विशेष रूप से सचेष्ट है। वह जनता की कला-विषयक उन्नति का भी आकांक्षी है। स्थापत्य-कला द्वारा प्रजा के हृदय में 'सुलाने वाला' नहीं, 'जगाने वाला' भाव भरना चाहता है। मृगनयनी उसे सभी महान् कार्यों को करने की प्रेरणा देती है। वह राजा की अति कला-प्रियता को कर्तव्य का स्मरण दिलाकर संयमित कर देती है। वह राजा से अनुनय करती है—"हम कलाओं को अधिक समय देंगे तो वे (सैनिक) अवसर पाते ही वासनाओं पर उतर-उतर आयेंगे। कला कर्तव्य को सजग किये रहे, भावना विवेक को सम्बल दिये रहे, मनोबल और धारणा एक-दूसरे का हाथ पकड़े रहें।" इस प्रकार मृगनयनी से प्रेरणा प्राप्त कर मानसिंह आजीवन प्रजा-हित में लगा रहता है।

वैदिककालीन राजा रोमक प्रजा को प्राणों से भी अधिक प्यार करता है। वह राज्य-च्युत होकर बारह वर्ष तक असीम कष्ट पाता है परन्तु फिर राजधानी में लौटकर प्रजा-हित के लिए सर्वस्व-समर्पण कर देता है।

इस प्रकार वर्माजी के उपन्यासों में राजा और प्रजा के सम्बन्ध अत्यन्त मधुर हैं। राजा प्रजा को सुत-समान प्यार करते हैं और प्रजा भी अपने राजा-रानी के लिए प्राण न्योछावर करने के लिए तत्पर रहती है।

रणनीति

युद्ध और सन्धियों के द्वारा राज्य का विस्तार कर प्रभु-सत्ता का विकास करना वीर क्षत्रियों की समुचित महत्त्वाकांक्षा मानी जाती है। भारतीय युद्ध-नीति की उल्लेखनीय विशेषता है, उसके 'धर्म-युद्ध'। धर्म-युद्ध में प्राण देने के महत्त्व का गुणगान भारतीय संस्कृति की अपनी विशेषता है। "धर्म युद्ध में मरने पर स्वर्ग और जीतने पर पृथ्वी-भोग प्राप्त होगा"—गीता के इस वाक्य ने न जाने कितने वीरों को सत् के लिए अपना बलिदान देने को प्रेरित किया।

वर्माजी युद्ध को बर्बरता तथा अमानुषिकता का चिह्न समझते हैं। युद्ध से कृषकों को अमित हानि उठानी पड़ती है, न जाने कितने माई के लाल युद्धाग्नि में प्राणों की आहुति दे देते हैं। अहंकार, राज्य-लिप्सा तथा धन-संग्रह के निमित्त

---

१. मृगनयनी, पृ० ४२२।

युद्ध करना पाप है।[1] "रक्त की नदियाँ पार करके विजयी को सफलता मिलती है, पर वह किस काम की ? मनुष्य के रक्त और पैसों से लड़ाई का आटा गूंदा जाता है, अनाथों की आहों, कराहों की धधकती आग पर उस आटे की रोटी सेंकी-पकाई जाती है जो वादी-विवादी लड़ाई करते हैं। वे इस रोटी से अपना पेट भरते हैं।"[2] लेखक करुणा, क्षमा, उदारता, सहिष्णुता आदि गुणों को शान्ति के लिए आवश्यक समझता है। रक्त-पिपासा को मानव-विकास के लिए घातक समझता है।

महारानी लक्ष्मीवाई का स्वराज्य-संग्राम पुनीत विचारधारा के कारण पवित्र अनुष्ठान बन जाता है। स्वराज्य-प्राप्ति का उद्देश्य महान् है। क्षुद्र स्वार्थ ने उसे दूषित नहीं होने दिया है। कृष्ण का कर्मयोग लक्ष्मीवाई के जीवन को परिचालित करता है। स्वराज्य-संग्राम धर्म-युद्ध है। स्वराज्य-प्राप्ति के लिए अनवरत प्रयत्न करना ही लक्ष्मीवाई के जीवन का ध्येय है। वह फलाफल की चिन्ता नहीं करती, वह तो नींव का मात्र एक पत्थर बन जाने की आकांक्षा रखती है। वह स्वराज्य-प्राप्ति की धारा का प्रारम्भ करना अपना कर्तव्य समझती है जो भविष्य में बल प्राप्त कर निरन्तर प्रवाहित होती रहे।[3] उसके प्रयत्नों में तनिक भी शिथिलता नहीं है। वह पूर्ण शक्ति, साहस तथा विक्रम के साथ युद्ध करती है क्योंकि उसे मृत्यु का भय नहीं। वह भली-भाँति जानती है कि एक दिन सबको मरना है, परन्तु सत्कार्य में प्राण देना, भगवान का ध्यान करते मरना, यह जन्म-भर की अच्छी कमाई से प्राप्त होता है। आत्मा अमर है। शरीर का चाहे जो कुछ हो, वही एक प्रकार शेष रहता है।"[4]

रानी गुप्त रूप से समस्त भारत को एक सूत्र में पिरोने का प्रयत्न करती है।[5] समस्त भारत में अंग्रेजों के विरुद्ध विद्रोह प्रारम्भ हो जाता है, रानी तुरन्त नेतृत्व अपने हाथ में लेकर युद्ध प्रारम्भ कर देती है।

रानी अत्यधिक साहसी है। भय तो उसे छू भी नहीं गया है। वह निर्दिष्ट पथ पर बढ़ती जाती है। मार्ग की किसी भी बाधा अथवा कठिनाई से विचलित

---

१. टूटे काँटे, पृ० ८१।
२. अहिल्यावाई, पृ० ६६।
३. झाँसी की रानी, पृ० १६३।
४. वही, पृ० ४१६।
५. वही, पृ० १८६-१९०-४६९।

नहीं होती।[१] भयंकर गोलाबारी में भी झाँसी की जनता को सांत्वना देती है।[२] युद्ध-भूमि में उसके साहस को देखकर शत्रु भी सन्नाटे में आ जाते हैं।[३] रानी की वीरता अश्रुतपूर्व है।[४] रोज़ के साथ रानी अद्भुत वीरता से युद्ध करती है। राव साहब की मूर्खता को भी रानी का पराक्रम ही ढक पाता है।[५]

रानी में शक्ति तो जैसे कूट-कूटकर भरी है। स्वराज्य-प्राप्ति में आने वाली प्रत्येक बाधा को वह दृढ़ता के साथ दूर करती है। रण-क्षेत्र में भयंकर रूप से आहत हो जाने पर भी वह मारती-काटती आगे बढ़ती जाती है।[६]

उसके युद्ध-कौशल को देखकर उसके सेनानी तो स्तम्भित हो ही जाते हैं, रोज़[७] एवम् स्मिथ[८] आदि शत्रु भी किंकर्तव्यविमूढ़ हो उठते हैं। वह दुर्गा की भाँति दोनों हाथों से शत्रु-संहार करती आगे बढ़ती जाती है। शत्रु-पक्ष इस युद्ध-कौशल को देखकर विस्मयाभिभूत हो उठता है।[९]

उस जैसा सेनानायक मिलना विरल है। वह इतनी सतर्कता, चतुराई तथा बुद्धिमत्ता से युद्ध करती है कि उसके सैनिक कम संख्या में आहत होते हैं और शत्रु-सेना का अधिकाधिक संहार होता है। अपनी सीमित सेना तथा कम हथियारों से वह अंग्रेजों की अनुशासित, सीखी-सिखाई, साधन-सम्पन्न विराट सेना के छक्के छुड़ा देती है।[१०] राव साहब भी उसके सेना-नायकत्व को देखकर स्तम्भित रह जाता है।[११]

देश-प्रेम उसकी आराधना तथा स्वराज्य-प्राप्ति उसके जीवन का ध्येय है। उसके रक्त का प्रत्येक बिन्दु देश के लिए है। वह कर्म करने में विश्वास रखती है, फलाफल पर उसकी दृष्टि नहीं रहती। वह जनता की शक्ति को पहचानती है

---

१. झाँसी की रानी, पृ० २८२।
२. वही, पृ० ३६२।
३. वही, पृ० ४६९।
४. वही, पृ० २९०।
५. वही, पृ० ४४५।
६. वही, पृ० ४८८-४८९।
७. वही, पृ० ४४५।
८. वही, पृ० ४८५।
९. वही, पृ० २९०, ३०४, ३१०, ४१०, ४२९, ४६०, ४८६, ४८७।
१०. वही, पृ० २३२, ३९९, ४४५।
११. वही, पृ० ४४२-४४३।

और एकता तथा संगठन में प्रबल विश्वास रखती है।[१] रानी रक्त की प्यासी नहीं है। वह उद्देश्य-विहीन युद्ध को व्यर्थ तथा निरर्थक समझती है।[२] वह कर्मयोग में विश्वास रखती है। वह जनता को उत्साहित करती हुई कहती है कि स्वराज्य-प्राप्ति हमारा उद्देश्य होना चाहिए। यह आवश्यक नहीं कि स्वराज्य-स्थापन हम अपने जीवन-काल में ही देख लें।

महारानी अवन्तीबाई के जीवन की राज्य-धुरी भी धर्म ही है। वह जितने युद्ध करती है धर्म-रक्षा के निमित्त ही करती है।[३] युद्ध में रक्तपात को वह घृणित समझती है परन्तु जब वही युद्ध उच्च-आदर्श की पूर्ति के लिए, देश-रक्षा तथा धर्म-रक्षा के लिए होता है, पवित्र अनुष्ठान बन जाता है।

अवन्तीबाई का हृदय, देश-प्रेम से परिपूर्ण है। अंग्रेज़ों के अन्याय तथा अत्याचार से वह अत्यन्त क्षुब्ध है। वह अंग्रेज़ी-राज्य, एक क्षण के लिए भी सहने को तत्पर नहीं।[४] वह देश को स्वतन्त्र कराने के लिए कृतसंकल्प है। अपने देश तथा धर्म के नाम पर वह फिरंगियों को देश से बाहर खदेड़ देने को कटिबद्ध है।[५] वह अत्यन्त सावधान, दृढ़, वीर, पराक्रमी तथा साहसी है।[६] शत्रु तक कहने को विवश हैं कि "विकट औरत है। गजब की हिम्मत वाली है।"[७] युद्ध प्रांगण में उसका पराक्रम द्रष्टव्य है।[८]

उसके कुशल नेतृत्व में सेना दृढ़तापूर्वक युद्ध करती है। उसके सैनिक कम तथा शत्रु के अधिक आहत होते हैं। रानी योजनापूर्वक एक-एक गढ़ जीतती है तथा उनका सुप्रबन्ध कर आगे बढ़ती है। वह वाडिंगटन जैसे कुशल सेनानायक के छक्के छुड़ा देती है।[९] वह रानी का पराक्रम, साहस तथा रण-कौशल देखकर दंग रह जाता है।

दुर्गावती अपने पति के देहावसान के पश्चात् अधिकाधिक धार्मिक प्रवृत्ति

---

१. झाँसी की रानी, पृ० १६४।
२. वही, पृ० ३३६।
३. रामगढ़ की रानी, पृ० ३०, १४८।
४. वही, पृ० ३०।
५. वही, पृ० १३१।
६. वही, पृ० ६३।
७. वही, पृ० १६६।
८. वही, पृ० १७०।
९. वही, पृ० १५२, १५४, १५५।

की होती जाती है। युद्ध के अवसर पर भी वह धर्म को त्यागना अनुचित समझती है।[१] रानी परम वीर, साहसी तथा कुशल सेनानायक है। भिन्न-भिन्न प्रकार से युद्ध-संचालन कर वह शत्रु को दिग्भ्रमित कर देती है। वह सदैव इसका प्रवन्ध करती है कि अपने सैनिक कम तथा शत्रु के अधिक संख्या में आहत हों।[२] रानी अत्यन्त वीर, कूटनीतिज्ञ तथा शक्तिशालिनी है। वह रण-प्राँगण में साक्षात् दुर्गा वनकर शत्रु-संहार करती है।[३] जैसा गौरवपूर्ण उसका जीवन है वैसी ही महानता के साथ वह मृत्यु का भी वरण करती है। वह रण-प्राँगण में शत्रुसंहार करती हुई मृत्यु को प्राप्त होती है।[४]

अहिल्यावाई परम धार्मिक प्रवृत्ति की स्नेहमयी, कोमलहृदया, विनम्र एवं महान् है। वह रक्तपात को घृणा की दृष्टि से देखती है। जहाँ तक संभव हो और जहाँ कौशल से कार्य निकलता हो वहाँ व्यर्थ में जन-संहार करना वह अनुचित समझती है परन्तु वह कायर नहीं है। परमवीर, रण-कुशल तथा शक्तिशालिनी है। चन्द्रावत-विद्रोह दमन वह स्वयं सेना का नेतृत्व करके करती है।[५]

ग्वालियर का राजा मानसिंह परम शक्तिशाली, वीर एवं साहसी है। सुलतान सिकन्दर अनेक वार ग्वालियर पर आक्रमण करता है, परन्तु मानसिंह की असाधारण वीरता तथा सैन्य-संचालन के कारण वार-वार पराजित होकर लौट जाता है। मानसिंह का कला-प्रेमी हृदय भीषण रक्तपात का विरोधी है। वह वल से नहीं अपितु छल से सिकन्दर को लौटाने के विषय में विचार करने लगता है। उसकी इस अति कलाप्रियता-जन्य युद्ध-विमुखता, शिथिलता एवं अन्यमनस्कता को दूर कर, उसे उत्तेजित करने के लिए तथा उसके हृदय में वीर भाव जाग्रत करने के लिए उसकी रानी मृगनयनी उसकी भर्त्सना करती हुई कहती है कि, "वीणा को वजाते-वजाते काम पड़ने पर यदि तुरन्त तलवार न उठा पाई, कोमल सेज पर सोते-सोते संकट आने पर, यदि तुरन्त गरजकर चुनौती न दे पाई, जिन कानों में मीठे स्वरों की रसधार वह-वहकर जा रही थी, उन्हीं कानों में यदि रणवाद्यों और कड़खों की धुन न समा पाई तो ऐसी वीणा, और ध्रुवपद की तानों का काम ही क्या ?—छोड़िए मुझे, क्षत्रिय के लिए इस समय जो उचित है,

---

१. दुर्गावती, पृ० २४५-२४६।
२. वही, पृ० २४७, २६६, ३०२, ३०७।
३. वही, पृ० ३२८।
४. वही, ३३०-३३१।
५. अहिल्यावाई, पृ० ६३, ६४, ७६।

उसके करने में जुट जाइए। अभी केवल कर्तव्य की बात सोचिए।"[१] मृगनयनी के इन तेजस्वी एवं ओजपूर्ण शब्दों से मानसिंह की शिथिलता दूर होती है और वह अमित साहस तथा शौर्य के साथ शत्रु को पराजित करता है।

वर्माजी के उपन्यासों में युद्ध राज्य-विस्तार-लिप्सा अथवा किसी नीच आशय को लेकर नहीं होते। या तो जितने युद्ध हुए हैं वे धर्म-युद्ध हैं, अथवा आत्म-रक्षा के निमित्त राजा युद्ध करने को बाध्य हुए हैं। अहिल्याबाई तो यथासम्भव युद्ध की स्थिति को टाल देती है। स्त्रियों की सेना निर्मित करके वह राघोबा को लज्जित तथा कुण्ठित कर भीषण रक्तपात नहीं होने देती।[२] जहाँ कौशल से कार्य निकलता हो वहाँ व्यर्थ में जनसंहार करना वह अनुचित समझती है।

वर्माजी ने अपने उन्नत विवेक तथा सुलझी बुद्धि से राजनीति की अच्छाइयों को ही ग्रहण किया है। उन्होंने अपने उपन्यासों में उसे छल-प्रपंच तथा कूटनीति से दूर रखा है। उनके लिए राजनीति साधन है, साध्य नहीं। मानव-कल्याण की कामना ही उनके हृदय की एकमात्र इच्छा है, उस पवित्र भावना के उत्कर्ष तथा विकास में राजनीति का योग उन्हें अपेक्षित है।

शत्रु के साथ आचरण

लेखक की इस भावना का परिचय उसके उपन्यासों में दृष्टिगत होता है। वह शत्रु के साथ भी अमानुषिक एवं बर्बर व्यवहार का पक्षधर नहीं है। इसीलिए उसके उपन्यासों के पात्रों का आचरण अपने शत्रु के साथ भी मानवतावादी है।

अंग्रेज़ों को अवन्तीबाई अपना प्रबल शत्रु समझती है। आजीवन उनसे युद्ध कर भारत माँ की पराधीनता की शृंखलाओं को तोड़ने का प्रयत्न करती रहती है। अंग्रेज़ों के लिए उसके हृदय में अत्यधिक रोष है तथा वह उन्हें घृणा की दृष्टि से देखती है। परन्तु वह अपना मानवतावादी दृष्टिकोण कभी नहीं त्यागती। वाडिंगटन का अष्टवर्षीय बालक उसे रणक्षेत्र में प्राप्त होता है, उसे तुरन्त वाडिंगटन के पास भेजना वह अपना कर्तव्य समझती है। उसका वध करना वह अनैतिक मानती है।[३]

इसी प्रकार महारानी लक्ष्मीबाई का विशाल हृदय, चिरशत्रु अंग्रेज़ों के परिवार का भूख से व्याकुल होकर शरीर-त्यागना सहन नहीं कर पाता। सत्याग्रह-

---

१. मृगनयनी, पृ० ३४७-३४८।

२. अहिल्याबाई, पृ० ६१।

३. रामगढ़ की रानी, पृ० १५७-१५८।

संग्राम के अनुष्ठान को वह इस प्रकार दूषित करना अनुचित समझती है। गार्डन की असहायावस्था से लाभ उठाना वह अनैतिक मानती है। दयामयी लक्ष्मीबाई अपनी सहेलियों से गार्डन के पास रोटियाँ भिजवाती है, उसकी तथा अन्य अंग्रेज स्त्री-पुरुष एवं बालकों की रक्षा कर अपनी महानता का परिचय देती है।

इसी प्रकार दुर्गावती की मानवतावादी बुद्धि नीच, कृतघ्न, पापी तथा विश्वास-घाती घायल सुघरसिंह का वध करने की आज्ञा नहीं देती। उसकी करुण तथा शोच-नीय दशा देखकर दुर्गावती अपने क्रोध का शमन करती है तथा "न्यायात् पथः प्रवि-चलन्ति पद न धीरा" का स्मरण कर, उसके भयंकर कृत्यों को विस्मृत कर वैद्य को उपचार करने का आदेश देती है तथा मुगलों से उसकी रक्षा कर उसे सुरक्षित स्थान पर पहुँचवा देना अपना कर्तव्य समझती है।[१]

इसी प्रकार दलीपसिंह में स्मरण-शक्ति पुनः प्राप्त करके असाधारण परिवर्तन आता है। उसकी क्रूरता तथा बर्बरता तिरोहित हो जाती है। वह उदारतापूर्वक मानसिंह को तथा अपनी पत्नी कलावती को जिसने मानसिंह से विवाह कर लिया है, क्षमा कर देता है। धामोनी-विजय के पश्चात् उदार दलीपसिंह क्रोधान्ध महन्त से डरू की रक्षा करता है। इस प्रकार अपनी उदारता से वह शत्रु को भी मित्र बना लेता है।

राजसिंह अपनी प्रेयसी कला को ग्वालियर भेजता है जिससे वह किले का भेद उसे बता सके। कला मानसिंह-परिवार में कलह तथा वैमनस्य उत्पन्न करने का भगीरथ प्रयत्न करती है। किले के चित्र बनाती है और सेना के विषय में बहुत कुछ जान लेती है। योजना के रहस्य का उद्घाटन हो जाने पर मानसिंह उसे मृत्यु-दण्ड न देकर सम्मानपूर्वक राजसिंह के पास पहुँचवा देता है।

वर्माजी के उपन्यासों को पढ़कर सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है कि उन्होंने अपने उन्नत विवेक तथा सुलझी बुद्धि से राजनीति की अच्छाइयों को ही ग्रहण किया है, उसे छल-प्रपंच तथा कूटनीति से दूर रखा है।

---

१. दुर्गावती, पृ० ३१६।

६ : : वर्माजी के उपन्यासों का सामाजिक मूल्यांकन

उपन्यास का नैतिक व्यवस्था पर प्रभाव

जब उपन्यासकार उपन्यास-रचना करने बैठता है तब उसके नैतिक चिन्तन का प्रभाव तो उपन्यास पर पड़ता ही है, समाज के नैतिक आदर्शों को भी वह दृष्टि-ओझल नहीं कर पाता। उपन्यासकार मानव-जीवन की व्याख्या करता है और साथ ही साथ वह नये नैतिक आदर्शों की स्थापना करके समाज की नैतिक चेतना को उद्बुद्ध भी करता है। "इस प्रकार व्याख्याकार और सृष्टा के दोहरे उत्तर-दायित्व को निभाने के कारण, उपन्यास-साहित्य सामाजिक और नैतिक परिवर्तन का एक महत्त्वपूर्ण साधन भी है और यह समूचे समाज के आचरण को एक निश्चित दिशा में मोड़ने की क्षमता रखता है।"[१]

टी० एस० इलियट भी उपन्यास के इस प्रभाव के विषय में लिखता है कि धर्म और उपन्यास, दोनों का क्षेत्र मानव आचरण है। धर्म हमारी नैतिकता की, तथा दूसरों के प्रति हमारे आचरण की रूपरेखा निर्धारित करने के अतिरिक्त, हमारे अन्दर आत्मविश्लेपण की भावना जगाता है तो उपन्यास साहित्य भी हमारे आच-रण को प्रभावित करने के अतिरिक्त हमारे व्यक्तित्व और चिन्तन पर प्रभाव डालता है। जब हम देखते हैं कि उपन्यास के पात्र एक खास तरह का आचरण करते हैं और उपन्यासकार उस आचरण का समर्थन करता है, तो अप्रत्यक्ष रूप में हम भी वैसा ही आचरण करने को प्रेरित होते हैं।"

इस आलोक में वर्माजी के उपन्यासों का सामाजिक मूल्यांकन करने पर स्पष्ट होता है कि उनकी नैतिक स्थापनाओं का समाज पर स्वस्थ प्रभाव पड़ा है। सर्व-प्रथम वर्माजी ने समाज की नारी-विषयक धारणा को बदलने का श्लाघनीय प्रयास किया है।

वैदिक युग की स्वतन्त्र विचारक, विदुषी तथा कर्मनिष्ठ नारी उन्नीसवीं शताब्दी तक आते-आते पूर्णतया अपना स्वतंत्र व्यक्तित्व खो चुकी थी। पुरुष उसका

---

१. हिन्दी-उपन्यास का विकास और नैतिकता : पृ० २७।

भाग्य-विधाता बन चुका था। वही उसके कर्म का नियामक था। पर्दे के पीछे छिपी असहाय, निर्बल तथा परवश नारी सास-श्वसुर की सेवा करने, संतान-प्रसव करने तथा पुरुष की वासनाओं की तृप्ति करने में ही अपने जीवन की सफलता तथा सार्थकता मानने लगी थी। घर की सीमाओं तक ही उसका साम्राज्य था। परिवार से बाहर समाज तथा देश के प्रति भी उसका कुछ कर्त्तव्य है, यह वह भूल चुकी थी। उन्नीसवीं तथा बीसवीं शती के समाज-सुधारक नारी को पर्दे से बाहर लाने के लिए, उसके मानसिक तथा बौद्धिक विकास के लिए अनवरत प्रयत्न कर रहे थे। साहित्यकार नारी की करुण स्थिति से दयार्द्र होकर इस पर सहानुभूति की वर्षा कर रहे थे।

ऐसी परिस्थिति में वर्माजी के उपन्यासों की अधिकांश प्रमुख नारियाँ इतिहास से प्राण ग्रहण कर, जीवन के प्रति अपना स्वस्थ, सबल तथा सशक्त दृष्टिकोण प्रस्तुत करती हैं तथा अपने तेजस्वी व्यक्तित्व से समाज की धारणा को बदलती हैं। उनका आत्मबल अत्यधिक प्रबल है। वे शक्ति तथा साहस की साक्षात् प्रतिमाएँ हैं। वे पर्दे के पीछे छिपी, असहाय, निर्बल तथा कोमल अबलाएँ नहीं हैं, कन्धे-से-कन्धा मिलाकर पुरुष के साथ संसार के कष्टों तथा विपत्तियों का साहस के साथ सामना करती हैं तथा रण-प्राँगण में शत्रु के छक्के छुड़ा देने की क्षमता रखती हैं। उन पर न तो करुणा दर्शायी जा सकती है न सहानुभूति-वर्षा करना सम्भव है। उनके तेजस्वी व्यक्तित्व से प्रभावित होकर मस्तक श्रद्धा से नत हो उठता है तथा समाज, नारी-विषयक धारणा को बदलने के लिए बाध्य होता है।

लेखक भारत की प्राचीन संस्कृति से विशेष रूप से प्रभावित है। अतः नारी के चित्रांकन में भी भारतीय संस्कृति की रेखाएँ स्पष्ट लक्षित होती हैं। उसने प्राचीन और नवीन का समन्वय करके अभिनव नारी-चरित्र की अवतारणा की है। इतिहास-प्रसिद्ध नारी पात्रों के चतुर्दिक कथानक का ताना-बाना बुनकर लेखक ने उसमें आधुनिक समस्याओं और विचारधाराओं का समावेश कर अपनी कुशलता का परिचय दिया है। लक्ष्मीबाई, अहिल्याबाई, दुर्गावती आदि, प्राचीन संस्कृति की निर्जीव पाषाण प्रतिमाएँ नहीं हैं, प्राचीन भव्यता एवं आदर्श के आलोक से मण्डित उनका चरित्र आज भी प्रेरणादायक है। इसी प्रकार सामाजिक उपन्यासों के नारी पात्र आधुनिक होते हुए भी प्राचीन संस्कृति से प्रभावित हैं। नवीन और प्राचीन का यह समन्वय उनके उपन्यासों की नारी-पात्रों को अत्यन्त सजीव, सशक्त एवं जीवन्त बना देता है। उनका व्यक्तित्व ऐसी अनोखी गरिमा एवं तेजस्विता से मण्डित होता है कि चिरकाल तक उनका प्रभाव मानस-पटल पर अंकित रहता है।

वर्माजी ने सांस्कृतिक जीवन में नारी को महत्त्वपूर्ण और सम्मानित स्थान प्रदान किया है। उसे गृह-सीमाओं से बाहर लाकर उसकी शक्ति, साहस एवं तेज से समाज को परिचित कराके, उसका उचित मूल्यांकन किया है। समाज में उसकी श्रेष्ठता प्रतिपादित करके उसकी नारी-सम्बन्धी भ्रान्त धारणाओं को परिवर्तित करने का श्लाघनीय प्रयास किया है।

वर्माजी ने नारी को सामाजिक स्वीकृति दिलाने का भी प्रयत्न किया है। उन्होंने अपने युग की नारी को लेकर गहन मनन-चिन्तन किया है। मिथ्याडम्बरों एवं अन्ध-विश्वासों से जकड़ी नारी का सामाजिक मूल्य नगण्य है, न उसे सम्मान प्राप्त है न सहानुभूति। लेखक ने उसे उपेक्षित, दयनीय एवं प्रताड़ित स्थिति से मुक्ति दिलाकर सम्मान एवं आदर प्रदान किया है। इतिहास से प्रमाण खोजकर उसकी विस्मृत तेजस्विता एवं शक्ति को समाज के सम्मुख रखकर उसे गौरव दान किया है। लेखक नारी को आत्म-विकास की सुविधा प्रदान करने में भी अत्यन्त उदार है। वह भारतीय नारी को दयनीय स्थिति से ऊपर उठा कर उसे सम्मान प्रदान करना आवश्यक मानता है। समाज के स्वस्थ परिचालन के लिए उसने नारी की बौद्धिक जागरूकता का भी समर्थन किया है।

वर्माजी प्रगतिशील एवं जागरूक कलाकार हैं। वे समाज की उन्नति तथा देश का विकास चाहते हैं। वे जानते हैं कि कोई भी समाज अथवा देश आधी से अधिक जनसंख्या को निष्क्रिय, निस्तेज एवं निरर्थक बनाकर उन्नति नहीं कर सकता, इसलिए वे नारी-जागरण का शंखनाद कर भारत को चैतन्य करना चाहते हैं।

वर्माजी ने समाज की नारीविषयक धारणा को परिवर्तित करने का प्रयत्न तो किया ही है, समाज को कर्म की भावना से आन्दोलित करने की चेष्टा भी की है। उन्होंने शताब्दियों से आती हुई निवृत्ति की विषैली जंजीरों से समाज को मुक्त करके भारतवासियों को प्रवृत्ति के कर्म-मार्ग पर आरूढ़ करने का प्रयास किया है क्योंकि ब्राह्मणों का उपदेश सुनते-सुनते जनता धीरे-धीरे अकर्मण्य, आलसी, कायर तथा निर्धन होती जा रही थी। निवृत्तिवादी, जनता को अहिंसा का व्यवहार करने का आदेश देते थे। वे संसार को निस्सार बताकर उसे सांसारिक सुख-सुविधाओं से विरत रहने का उपदेश देते थे तथा आवागमन के चक्कर से मुक्त होने के लिए कर्माकर्म से तटस्थ रहने की शिक्षा देते थे। इन उपदेशों को सुनते-सुनते जनता के हृदय में संसार के प्रति घोर अनास्था उत्पन्न हो गयी। वह पारलौकिक सुख की चिन्ता में अपने सांसारिक कर्तव्य को भी भूल बैठी। एक प्रकार की जड़ता और तटस्थता ने उसे घेर लिया। परतन्त्रता की

बेड़ियों को काटने, अन्याय का प्रतिकार करने तथा स्वाभिमान की रक्षा करने के लिए वह पूर्णतः उदासीन हो गयी।

वर्माजी आलस्य तथा अकर्मण्यता के परम विरोधी हैं। वैभव और विलास को वे त्याज्य समझते हैं। समाज के बीच फैली इस निष्क्रियता की भावना को दूर करने के लिए लेखक ने स्फूर्ति से भरे, कर्मठ एवम् तेजस्वी पात्रों की अवतारणा अपने उपन्यासों में की है। जीवन उनके लिए फूलों की सेज नहीं है। उपन्यस्त पात्रों का विचार है कि उस जीवन की सार्थकता ही क्या जिसमें साहस न हो, विक्रम न हो, तेजस्विता न हो। साहस-विहीन, विक्रम-शून्य जीवन तो मृत्यु का पर्याय है।[१] जीवन-भर बाधाओं तथा कठिनाइयों का साहस के साथ सामना करने में ही वे वास्तविक आनन्द प्राप्त करते हैं।[२] तड़क-भड़क, शान-शौकत, दिखावट और बकझक[३] को वे व्यर्थ समझते हैं। वे जीवन में शक्ति, स्फूर्ति तथा साहस को आवश्यक मानते हैं। उनकी दृढ़ धारणा है कि जीवन की कठोरता तथा संघर्ष का सामना करने के लिये सशक्त शरीर तथा उत्कट आत्मबल आवश्यक है।

लेखक का विचार है कि पुरुष को ही नहीं अपितु नारी को भी स्फूर्तिमयी, शक्तिशालिनी, स्वस्थ तथा सबल होना आवश्यक है। वह नारी को सुन्दरता की मूर्ति तथा सुकुमारता की प्रतिमा तो देखना चाहता ही है, उसमें बल, विक्रम तथा पौरुष देखना भी उसे रुचता है। वह नारी को कल्पना-क्रोड़ की मनभावनी मूर्ति-मात्र नहीं मानता, पुरुष के कन्धे से कन्धा मिलाकर संसार-संग्राम में उसका जूझना ही उसे विशेष प्रिय है।

श्रम का महत्त्व

लेखक ने अकर्मण्यता दूर करने का एकमात्र साधन श्रम माना है। श्रम विहीन जीवन आलस्य तथा अकर्मण्यता का जीवन है, जिससे जीवन में एकरसता आ जाती है, वैविध्य समाप्त हो जाता है तथा स्वास्थ्य विदा ले जाता है। वर्माजी के पात्र भली भाँति जानते हैं कि फूलों की सेज तथा श्रम का संग नहीं हो सकता। लक्ष्मीजी का वरदान प्राप्त करने के लिए निश्छल मन से श्रम करना वे आवश्यक समझते हैं। वह श्रम करने में यह नहीं देखते कि कौन-सा कार्य श्रेष्ठ

---

१. अचल मेरा कोई, पृ० १२५।
२. महारानी दुर्गावती, पृ० १३।
३. अहिल्याबाई, पृ० १३६।

है तथा कौन-सा नगण्य। प्रत्येक वह श्रम, जो ईमानदारी के साथ किया जावे वे उचित समझते हैं।[१]

वर्माजी आलस्य तथा अकर्मण्यता के परम विरोधी हैं। वे श्रम के साथ-साथ कर्मयोग को जीवन के लिए उपयुक्त समझते हैं। झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई कर्मयोग की साक्षात् प्रतिमूर्ति है। वह निष्काम कर्म करने में विश्वास रखती है। फलाफल की चिन्ता न कर वह कर्मरत रहती है। सत्कार्य करते हुए तथा भगवान का ध्यान करते हुए मृत्यु को प्राप्त करना ही वह जीवन का गौरव समझती है।[२]

वर्माजी निवृत्ति को जीवन की सफलता के लिए घातक समझते हैं। वे उस गृहस्थ को सबसे बड़ा साधु समझते हैं जो आजीवन संघर्ष-रत रहकर, संसार की कठिनाइयों तथा विपत्तियों का साहस के साथ सामना करता है। वे काम को ही सब कुछ मानते हैं। काम करना ही मानव का धर्म है। काम करते-करते ही मनुष्य स्वर्ग-लोक की भी प्राप्ति कर सकता है।[३]

श्रम का महत्त्व प्रतिपादित करने के अतिरिक्त वर्माजी ने देश में राष्ट्रीय भावनाओं के प्रचार तथा प्रसार में योग दिया है। ऐतिहासिक उपन्यासों के पात्रों की राष्ट्रीय भावना अनुपम है। झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई तथा तात्या टोपे के रक्त का अन्तिम बिन्दु तक देश के लिये है। देश-प्रेम उनका धर्म, देश-उन्नति उनका कर्तव्य तथा स्वराज्य प्राप्ति उनके जीवन का उद्देश्य हो उठता है। देश को अंग्रेज़ों से मुक्त करने के लिए लक्ष्मीबाई भारत की शक्तियों को संगठित करती है, देश की जनता में अंग्रेज़ों के विरुद्ध रोष तथा देश-प्रेम की उत्कट भावना जाग्रत करती है तथा स्वराज्य-धारा को आगे बढ़ाने के लिए कृतसंकल्प है। वह स्वराज्य-प्राप्ति के लिए अपना समस्त जीवन अर्पित कर देती है और हँसते-हँसते मृत्यु का वरण कर मरण को अमरत्व प्रदान कर जाती है।

महारानी दुर्गावती भी अपने धर्म और अपने देश की रक्षा में अपना सब कुछ स्वाहा कर देने के लिए कटिबद्ध है। महारानी अवन्तीबाई के हृदय में भी वही ज्योति जगमगा रही है जो लक्ष्मीबाई के हृदय को आलोकित किये है। वह अपने धर्म की वेदी पर सिर चढ़ाने के लिए, फ़िरंगियों को अपनी भूमि से हटाने के लिए आजीवन अनेकानेक कष्टों तथा विपत्तियों का सामना करती है। किसी भी मूल्य

---

१. सोना, पृ० १९१, २४७।

२. झाँसी की रानी, पृ० १६३, १८१, ४१६।

३. मृगनयनी, पृ० ४७६।

पर परदेशियों के भार से दबने को तत्पर नहीं।[१] स्वराज्य-युद्ध में प्राणों की आहुति देकर वह इतिहास में स्वर्णाक्षरों में नाम अंकित कर जाती है।

जिस समय परतन्त्रता की शृंखला में आबद्ध भारतीय समाज अकर्मण्य, निष्क्रिय तथा हतबुद्धि हो रहा था वर्माजी के उपन्यासों के तेजस्वी पात्र विशेष रूप से नारी-पात्र समाज में उत्साह, उमंग, कर्मठता, आशावादिता, शक्ति तथा वीरता के भाव जाग्रत कर रहे थे। ज्वलन्त उदाहरण समाज के सम्मुख रखकर उसमें नवचेतना के भाव जाग्रत कर रहे थे। वर्माजी के उपन्यासों की आदर्श नारियाँ विगत वैभव की स्मृति दिलाकर हृदय की हीन भावना को दूर करती हैं; देश-प्रेम की एक ऐसी ज्योति जलाती हैं कि जन-जन का हृदय उससे प्रकाशित हो उठता है। हृदय का आलोक चारों दिशाओं को आलोकित कर देता है। झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई देश-प्रेम का जो बीज वपन कर जाती है, वही समाज के क्रोड़ में फलता फूलता और विकसित होता है और गांधी तक आते-आते पूर्ण पल्लवित, सुदृढ़ वृक्ष में परिवर्तित हो जाता है।

यह कहना अनुचित नहीं कि वर्माजी के उपन्यासों की राष्ट्रीय भावनाओं ने देश में राजनीतिक जाग्रति उत्पन्न करने का प्रयास किया है। उनके देश-प्रेम रंजित उपन्यासों को पढ़कर हृदय में वीरता के भाव जाग्रत होते हैं और देश पर मर मिटने की भावना बलवती हो उठती है। झाँसी की रानी और रामगढ़ की रानी उपन्यासों को पढ़कर, अंग्रेजों के दमन और अत्याचार के प्रति क्षोभ होता है तथा जाग्रत आत्माओं के त्याग को देखकर हृदय में स्फूर्ति, उमंग तथा उत्साह उत्पन्न हो जाता है।

"वर्माजी ने ऐतिहासिक साहित्य के माध्यम से राष्ट्र-प्रेम और राष्ट्र-महिमा को व्यक्त किया है, जिससे हीनावस्थाग्रस्त भारतवासियों के हृदय में गौरव जगा और उन्होंने सांस्कृतिक पुनरुद्धार के लिए प्रयत्न किया।"[२]

मानवतावादी दृष्टिकोण

वर्माजी राष्ट्र-उद्धार एवम् देश-प्रेम का शंखनाद करके सुषुप्त भारतवासियों को प्रबुद्ध करते हैं। इसके अतिरिक्त युग-युग से उपेक्षित, अपमानित तथा कलंकित जीवन व्यतीत करने वाली वेश्या के प्रति भी वे समाज की सहानुभूति अर्जित करना चाहते हैं।

---

१. रामगढ़ की रानी, पृ० १३६, १६६।

२. माधुरी दुबे : हिन्दी गद्य का वैभव काल, पृ० ११८।

झाँसी की रानी उपन्यास में, उदारमना लक्ष्मीबाई के हृदय में वेश्या के लिए सहानुभूति का स्थान है। वह जानती है कि विषाक्त वातावरण तथा दूषित परिस्थितियों के बीच साँस लेने, पलने तथा बढ़ने के कारण ये नारियाँ कलंकित जीवन बिताने को बाध्य होती हैं। परन्तु उनके हृदय में भी वही नार्योचित गुण होते हैं, जिनकी अधिकारिणी प्रत्येक नारी है। वेश्या होने के कारण ही वे त्याज्य नहीं हैं। वेश्या-पुत्रियां मोतीबाई तथा जूही, लक्ष्मीबाई का संरक्षण तथा आश्रय पाकर कंचन हो उठती हैं। पवित्र वातावरण तथा सत्संगति प्राप्त कर वे अपना जीवन सफल करती हैं। लक्ष्मीबाई के स्वराज्य-स्थापना के ध्येय को वे अपने जीवन की आराधना बना लेती हैं। स्वराज्य-संग्राम के पुनीत युद्धमें अपने प्राणों की आहुति देकर वे अपना कलंक धो डालती हैं। अपने गर्हित जीवन से मुक्त होकर अमरता प्राप्त कर लेती हैं।[1]

इसी प्रकार दासी जीवन की निरर्थकता, निस्सारता तथा निरुपयोगिता से द्रवित होकर लक्ष्मीबाई अपनी सेवा में नियुक्त की गई दासियों को अपनी 'सहेली' के पद पर प्रतिष्ठित कर उन्हें गौरवान्वित कर देती हैं। स्वतन्त्रता-संग्राम में सक्रिय सहयोग देकर वे अपना जन्म सार्थक करती हैं। लक्ष्मीबाई की कृपा-दृष्टि प्राप्त कर वे अपने जीवन का विकास करती हैं। उनका मनोबल सशक्त, उनकी बुद्धि परिष्कृत, तथा उनका शरीर शक्तिशाली हो जाता है। वे साहस, विक्रम तथा शक्ति की साकार प्रतिमायें बन जाती हैं। लक्ष्मीबाई की मानवतावादी दृष्टि रज में से कंचन ढूंढ़ निकालती है।

अहिल्याबाई कोमल-हृदया, ममतामयी तथा पर-दुख-कातर है। दासियों को हीन तथा क्षुद्र समझना वह मानवता के विरुद्ध समझती है। निष्कपट हृदय से, सरलतापूर्वक अकिंचन सिन्दूरी को स्वयं से बड़ा बताकर वह अपनी उदारता तथा महानता का परिचय देती है।[2]

दासी रामचेरी को सखी के पद पर प्रतिष्ठित करना दुर्गावती की विशालहृदयता है। रानी का संवेदनशील हृदय वृद्ध पिता के करुण-क्रन्दन से द्रवित हो उठता है। वह तुरन्त महावत-पुत्र गनू की सहायता के लिए अपने प्राणों पर खेलकर प्रचण्ड प्रवाह में कूद पड़ती है। उसकी प्राण-रक्षा करना वह अपना पुनीत कर्तव्य समझती है।

लेखक अपनी संस्कृति के इस सूत्र को मानता है कि उपन्यास का लक्ष्य सत्यं,

---

१. झाँसी की रानी, पृ० ३६४।
२. अहिल्याबाई, पृ० ११६।

शिवं, सुन्दरम् होना चाहिए, यही उसका आदर्श है। वह प्रत्यक्ष उपदेश के विरुद्ध है तथा उसकी कोई एस्थेटिक वेल्यू नहीं मानता चाहे उपन्यास का क्षेत्र आर्थिक हो, सामाजिक हो, राजनैतिक अथवा नैतिक हो।[1]

लेखक का कथन है कि शुरू से ही "मेरा स्वभाव तथ्यों की खोज और उनके आधार पर लिखने का रहा है। मेरा एक सूत्र है, तथ्य या वास्तविकता की सृजनात्मक रचना, इसलिए हर उपन्यास या कहानी में कोई न कोई छोटी-बड़ी समस्या लुके-छिपे रख देता हूँ। नहीं तो 'कोरे फिक्शन' के बारे में मेरा भी वही मत समझिए जो हेरल्ड निकलसन का है। मात्र मनोवैज्ञानिक चरित्रों के समावेश या यौन-वासनाओं के उद्घाटन वाले फिक्शन का भविष्य तो क्या वर्तमान भी मुझे कुछ अच्छा नहीं जान पड़ता, क्योंकि मेरे मत में समाज के लिए उनकी उपयोगिता बहुत नहीं है।"[2]

लेखक आदर्शवादी उपन्यासकार हैं। समाज की उन्नति, व्यक्ति के विकास तथा देश की समृद्धि के लिए वह सदैव सचेष्ट रहता है। वर्तमान और भविष्य के लिए अतीत में जो प्रेरक, प्रबोधक तथा ओजवर्धक जान पड़ता है, उसे वह निस्संकोच हो स्वीकार करता है।

---

१. डा० शशिभूषण सिंहल : उपन्यासकार वृन्दावनलाल वर्मा, पृ० २८६।
२. वही, पृ० ३०१-०२।